उगते तारे खिलते फूल

विनोबा

उगते तारे खिलते फूल

(लघु कहानियों का संग्रह)

लेखक

आचार्य विनोबा

सर्व सेवा संघ प्रकाशन

राजघाट, वाराणसी-221 001

Email: sarvodayavns@yahoo.co.in

प्रकाशकीय

एक शानदार शीर्षक की पुस्तक है – 'उगते तारे खिलते फूल'। अँधेरे में राह दिखाते तारे एवं सुगंध विखेरते फूल। इस पुस्तक को पुनः एक बार सुधि पाठकों को अर्पित करते हुए हम अत्यन्त प्रसन्नता का अनुभव कर रहे हैं। सर्व सेवा संघ प्रकाशन द्वारा इसका प्रकाशन लगभग पाँच दशकों के लंबे अंतराल के बाद किया जा रहा है। संघ प्रकाशन ने यह तय किया है कि अपने खजाने से उपयोगी एवं प्रासंगिक पुस्तकों को पुनः आप तक पहुँचाया जाये। इस कदम से पाठक न केवल इतिहास के तत्कालीन संदर्भ व स्थिति से परिचित हो सकेंगे बल्कि विचारों की ऐसी छटाओं के भी साझीदार बन पायेंगे जो जीवन के सपनों में नये रंग भरने का सामर्थ्य रखते हैं। इस उद्देश्य से *टालस्टॉय* का *'यह कैसा अंधेर'*, आचार्य विनोबा थावे का *'मोहब्बत का पैगाम'* के बाद अगली कड़ी के रूप में आचार्य विनोबा की ही एक लघुकथाओं की पुस्तक *'उगते तारे खिलते फुल'* आपके हाथों में है।

आचार्य विनोबा की वक्तव्य शैली की विशेषता रही है कि वे गूढ़ सैद्धांतिक तत्त्वों को सरल एवं छोटी-छोटी कहानियों के माध्यम से लोगों के मन एवं दिमाग में उतार देते थे । इन कहानियों का संग्रह है—यह पुस्तक। इसमें कुल 73 कथाओं का समावेश है। ये कहानियाँ न केवल नैतिक संदेशों की वाहक हैं बल्कि संवेदनाओं के जगाती व उत्प्रेरित करती हैं और साथ ही साथ इंसानियत के बीज भी डाल जाती हैं।

इस पुस्तक के प्रकाशन की प्रक्रिया से संबद्ध सभी साथियों को धन्यवाद!

- अरविन्द अंजुम

संयोजक

1. ज्ञान की किरणें

आठ-दस साल का एक लड़का 'समिद्पाणि' होकर यानी हाथ में समिधा लेकर गुरु के पास गया और बोला : "मुझे ज्ञान दीजिये।"

गुरु बोले: "ये चार सौ गायें हैं। इन्हें चराओ। जब ये हजार गायें हो जायँ, तब मेरे पास ज्ञान के लिए आना।"

चार सौ की हजार गायें बनाने में एक-डेढ़ साल का समय जरूरी है। दस साल के लड़के को डेढ़ साल की एक योजना दे दी गयी।

वह लड़का हर रोज गायें चराने जाता और शाम को गुरु के पास लौट आता।

गुरु उसे प्रेम से खिलाते-पिलाते।

डेढ़ साल बाद गुरु ने शिष्य से पूछा : "तेरा चेहरा तेजस्विता से चमक रहा है। लगता है तुझे कुछ ज्ञान प्राप्त हुआ है?"

नम्र भाव से उसने जवाब दिया : "ज्ञान तो गुरु से ही प्राप्त होता है। वह तो मुझे आपकी कृपा से ही मिलेगा।"

गुरु ने कहा : "यह तो ठीक है, परन्तु तेरे चेहरे पर ज्ञान की चमक दीख रही है। क्या तुझे किसी ने ज्ञान दिया है?"

"अन्ये मनुष्येभ्य:"—शिष्य ने कहा—"मुझे इन मनुष्यों ने नहीं, दूसरों ने ज्ञान दिया है।"

उसे कुछ ज्ञान बैल ने दिया, कुछ हंस ने दिया, कुछ अग्नि ने दिया और कुछ ज्ञान मग्दु नामक पक्षी ने दिया।

"तुझे जो ज्ञान मिला है, वह बहुत अच्छा है।" गुरु ने कहा। उसकी पूर्ति में जो कुछ कहना था, वह भी कह दिया।

शिष्य कृतार्थ हो गया!

2. मन और प्राण

"गुरुदेव! मन किससे बनता है?"

"अन्न से।"

"और प्राण?"

"जल से।"

"यह कैसे?" शिष्य ने शंका की—"अन्न से शरीर का मांस और रक्त बनता है, पर मन अन्न से और प्राण जल से कैसे बन सकते हैं?"

गुरु ने इस प्रश्न को छोड़ते हुए शिष्य से कहा : "आयुष्मन्! तुम पन्द्रह दिन सिर्फ जल पर रहो।"

उपवास की समाप्ति के समय गुरु ने शिष्य से कहा : "बेटा, जरा ऋग्वेद और यजुर्वेद के अमुक-अमुक प्रसंग तो सुनाओ।"

"मुझे इस समय याद नहीं पड़ रहे हैं गुरुदेव!"

"क्यों?"

"क्योंकि अभी तो भूख के मारे प्राण निकले जा रहे हैं।"

"अच्छा तो जाओ, पहले कुछ खा-पी लो।"

शिष्य ने पारणा करने के बाद सारे प्रसंग सुना दिये।

गुरु बोले : "आयुष्मन्, समझ गये न कि अन्न से मन कैसे बनता है? आज तक यदि तुम जल न पीते तो प्राण कहाँ रहते ?"

3. आत्मा की पहचान

“आत्मा कया है?” शिष्य ने पूछा।

गुरु मौन रहे।

दुबारा पूछा।

फिर भी गुरु मौन रहे।

इस प्रकार तीन बार पूछा और तीनों बार गुरु मौन रहे।

चौथी बार शिष्य ने कहा : “आप उत्तर नहीं देते?”

“हमने तीन-तीन बार उत्तर दिया,” गुरु ने कहा—“इतने उत्तम तरीके से हमने उत्तर दिया था। उससे बेहतर तरीका और क्या हो सकता है? फिर भी तुम नहीं समझे! जो न बोलने से नहीं समझता, वह बोलने से कैसे समझेगा?”

4. सूक्ष्मता और व्यापकता

एक पिता अपने पुत्र को आत्म-बोध दे रहे थे। पुत्र ने पूछा : "आत्मा सूक्ष्म कैसे है?"

जैसे विज्ञान का शिक्षण प्रयोग से दिया जाता है, वैसे ही पुत्र को शिक्षण देते हुए पिता ने कहा : "देखो, सामने वह वृक्ष दीखता है न, उसका फल ले आओ।"

पुत्र फल लेकर आया। पिता ने कहा : "उसके टुकड़े करो और फिर उसके दाने के भी टुकड़े करो।"

पुत्र ने वैसा ही किया।

टुकड़े करने पर पिता ने पूछा : "बताओ, इसके अन्दर क्या देख रहे हो?"

"कुछ नहीं," पुत्र ने गहराई से देखकर जवाब दिया।

"बेटा, जहाँ कुछ नहीं दिखाई दे रहा है, वहीं आत्मा का वह सूक्ष्म रूप विद्यमान है, जिससे यह महान् वृक्ष बना है। इस वृक्ष का सारा विस्तार छोटे से बीज पर आधारित है। श्रद्धा रखो कि आत्मा का सूक्ष्म रूप ही इस विराट् विश्व का केन्द्र है।"

पुत्र ने प्रश्न को उलटकर पूछा : "तो आत्मा व्यापक कैसे है?"

पिता ने कहा : "पानी लाओ।"

पुत्र पानी ले आया।

"इसमें नमक घोलो।"

उसने नमक घोल दिया।

"अब इसके ऊपर-ऊपर से थोड़ा-सा पानी पीओ।"

पानी पीते ही पुत्र ने नाक-भौंह सिकोड़ी।

पिता ने पूछा : “बताओ, कैसा लगा?”

“खारा”

“अच्छा, अब ऊपर-ऊपर का थोड़ा पानी फेंककर बीच का पीओ।”

“वह भी खारा।”

उसे भी फेंककर एकदम नीचे का पानी पिया तो वह भी खारा।

पिता ने समझाया : “जैसे नमक पूरे-के-पूरे पानी में घुल-मिल गया, अलग दीख नहीं पड़ता, चखने से पता चल जाता है, वैसे ही आत्मा विश्व में घुलमिल गया है। देखने वालों को आत्मा की व्यापकता का पता नहीं चलता, पर अन्ततः अनुभव तो किया ही जा सकता है।”

5. आत्मा की अमरता

सुकरात को विष देकर मौत की सजा दी गयी। उसने कहा : "मैं अब बूढ़ा हो गया हूँ। चार दिन के बाद देह छूटनेवाली थी। जो मरने वाला था, उसे मारकर आप लोग कौन-सी बहादुरी कर रहे हैं? जरा सोचो तो कि यह शरीर एक दिन अवश्य मरने वाला है। जो मर्त्य है, उसे मारने में कौन-सी तारीफ है?"

जिस दिन सुकरात को विष दिया जानेवाला था, उससे पहली रात वह शिष्यों को आत्मा के अमरत्व की शिक्षा दे रहा था। शरीर में विष का प्रवेश होने पर उसे क्या-क्या वेदनाएँ होंगी, इसका वर्णन वह मौज से कर रहा था। उसे उसकी रत्तीभर भी चिन्ता न थी। आत्मा की अमरता सम्बन्धी यह चर्चा समाप्त होने पर उसके एक शिष्य ने पूछा : "मरने पर आपकी अंत्येष्टि-क्रिया कैसे की जाय?" उसने जवाब दिया : "खूब, मारेंगे तो वे और गाड़ोगे तुम! तो क्या वे मारनेवाले मेरे दुश्मन और तुम गाड़नेवाले मुझसे बड़ा प्रेम करनेवाले हो? वे अक्लमंदी से मुझे मारेंगे और तुम समझदारी से मुझे गाड़ोगे? तुम कौन हो मुझे गाड़नेवाले ? मैं तुम सबको पूरा पड़नेवाला हूँ। मुझे ने कोई मार सकता है, न कोई गाड़ ही सकता है। अब तक मैंने क्या समझाया तुम लोगों को ? आत्मा अमर है, उसे कौन मार सकता है, कौन गाड़ सकता है?"

और सचमुच आज दो-ढाई हजार वर्षों से वह महान् सुकरात सबको गाड़कर जिन्दा है!

6. परमेश्वर की फिकर

एक शख्स परमेश्वर के पास पहुँचा। परमेश्वर ने उसे डाँटते हुए कहा : “जब मैं भूखा था, तब तूने मुझे खिलाया नहीं, जब मैं प्यासा था, तब तूने पानी नहीं पिलाया और जब मैं ठिठुर रहा था, तब तूने कपड़े नहीं पहनाये!”

यह शख्स ताज्जुब में पड़ गया। उसने पूछा : “मेरी समझ में नहीं आया कि कब तू भूखा, प्यासा और नंगा होकर मेरे द्वार पर आया?”

परमेश्वर ने कहा : “सोच, तेरे इर्द-गिर्द कितने भूखे हैं, जिन्हें तूने खिलाया नहीं! कितने प्यासे हैं, जिन्हें तूने पानी नहीं पिलाया! कितने नंगे और अधनंगे हैं, जिन्हें तूने कपड़ा नहीं पहनाया! तूने उन सबकी फिकर नहीं की। इसका मतलब यह है कि तूने मेरी फिकर नहीं की।”

7. 'द' की अनुभूति !

एक बार देव, दानव और मानव तीनों प्रजापति के पास उपदेश के लिए पहुँचे।

प्रजापति ने सबको एक ही अक्षर दिया : 'द'।

देवों नें समझा : "हम लोग कामी हैं, हमें विषय-भोगों का चस्का लग गया है, अतः ब्रह्मा ने 'द' अक्षर द्वारा 'दमन' की सीख दी है।"

दानवों ने समझा : "हम लोग बड़े क्रोधी और दयाहीन हो गये हैं, हमें 'द' अक्षर द्वारा प्रजापति ने 'दया' की सीख दी है।"

मानवों ने समझा : "हम लोग बड़े लोभी हैं और धन-संचय के पीछे पड़े हैं। प्रजापति ने हमें 'द' के द्वारा 'दान' करने का उपदेश दिया है।"

प्रजापति ने सभी के अर्थों को ठीक माना, क्योंकि सब ने सीख को अपने-अपने अनुभवों से ग्रहण किया था।

8. लोक-चर्चा

एक बार शंकर और पार्वती नंदी पर सवार होकर सैर के लिए निकले। उन्हें देखकर किसी ने कहा : "अजी कैसे बेशर्म हो! यह बेचारा बैल है तो कया, इसे इस कदर लादना चाहिए?"

उसका समाधान करने के लिए माता पार्वती उतर गयीं। पैदल ही चलने लगी। तब शंकर भगवान् की टीका शुरू हुई। लोग बोले : "अरे इस सुकुमार अबला को पैदल चलाकर स्वयं बैल पर बैठा हुआ यह कौन जा रहा है?"

शंकर ने सोचा—'चलो पार्वती को नंदी पर बैठा दिया जाय। मैं पैदल चलूँ।'

दस ही कदम बढ़े होंगे कि लोक-चर्चा शुरू हुई : "कैसी बेहया औरत है जो अपने पति को तो पैदल चला रही है और खुद बैल पर बैठी है।"

आखिर नंदी के साथ-साथ दोनों ही पैदल चलने लगे।

नारद ने मुस्कराते हुए कहा : "अब तो आप बैल को ही सिर पर उठा लीजिये।"

शंकर सँभले और फिर पहले की ही भाँति दोनों नंदी पर सवार हो लिये।

9. मातृहस्तेन भोजनम्

श्री कृष्ण विद्याध्ययन कर संदीपन ऋषि के आश्रम से लौटने लगे, तो विदा देते समय गुरु ने कहा : “अब तू मुझसे वरदान माँग।”

कृष्ण ने कहा : “मुझे तो कुछ सूझता नहीं, क्या माँगूँ?”

गुरु ने आग्रह किया : “यदि तू वरदान नहीं माँगेगा, तो मेरा गौरव नहीं होगा।”

“तब यही वरदान दीजिये कि मुझे जीवनभर माँ के हाथ का भोजन मिलता रहे। मातृहस्तेन भोजनम्।”

ऋषि ने ‘तथास्तु’ कह दिया।

माता के हाथ का भोजन पाना संसार का सबसे बड़ा सौभाग्य समझा जाता है।

10. सत्यभामा का समाधान

सत्यभामा भगवान् कृष्ण को तौलना चाहती थी। एक पलड़े में भगवान् बैठे और दूसरे पलड़े में वह अपने आभूषण रखती गयी। अन्त तक भगवान् का पलड़ा भारी ही रहा। वह बड़ी परेशान हुई। इतने में रुक्मिणी आयी । उसने सत्यभामा की परेशानी दूर करने के लिए सोने के गहनों पर एक तुलसी-पत्र रख दिया। भगवान् का पलड़ा हलका हो गया! भक्ति से अभिसिंचित तुलसी के पत्ते की करामात देखकर सत्यभामा को समाधान मिल गया।

11. सुख का उपाय

एक दिन सत्यभामा ने द्रौपदी से पूछा, “तुम जंगल में रहकर भी सुखी हो और मैं महल में रहकर भी सुखी नहीं हूँ। ऐसा क्यों है? सुख की कुंजी जो तुम्हें मिली है, वह मुझे भी तो दो।”

द्रौपदी ने जवाब दिया : “दुःखेन साध्वी लभते सुखानि! दूसरे के वास्ते तकलीफ उठाने को तैयार रहने से ही सुख मिलता है।”

सुख का उपाय जानकर सत्यभामा प्रसन्न हो गयी।

12. गोवर्धन कैसे उठा?

एक बार गोकुल में जोरों की वर्षा हुई। सात दिनों तक पानी ने रुकने का नाम ही न लिया। घर-द्वार बह गये। पशु-पक्षी बह गये। मनुष्य भी बहने लगे, तब सारे लोग कृष्ण की ओर ताकने लगे।

श्रीकृष्ण ने कहा : "अगर हम लोग गोवर्धन पर्वत का ही छाता बना लें तो सारा संकट मिट जाय!"

सवाल उठा कि इतना बड़ा पहाड़ उठाया कैसे जाय?

क्षणभर के लिए बाँसुरी बजाना रोककर श्रीकृष्ण ने कहा : "आप सभी बाल-बच्चे, बड़े-बूढ़े, स्त्री-पुरुष मिलकर अपना सहारा लगायें तो वह अभी उठ सकता है।"

सबने श्रद्धापूर्वक सारी शक्ति से अपनी-अपनी लकुटियाँ ऊँची की तो अन्त में श्रीकृष्ण ने धीरे से अपनी कानी अँगुली पहाड़ को छुआ दी।

पहाड़ उठ गया। इन्द्र के प्रकोप से सबकी रक्षा हो गयी।

सबका सहयोग फला।

13. सहज क्षमा

वसिष्ठ को देखकर विश्वामित्र के मन में मत्सर पैदा हुआ। वह तपस्वी तो बहुत बड़ा था, बहुत बड़ी तपस्या करता था, लेकिन उसने वसिष्ठ के पुत्रों को आकर मारा। तो भी वसिष्ठ ने गुस्सा नहीं किया। विश्वामित्र ने देखा कि वसिष्ठ बिलकुल अड़ियल है, बिलकुल बेशरम है, तो उसे भी मारना चाहिए।

एक दिन वसिष्ठ-अरुन्धती बातें कर रहे थे। आकाश में चाँदनी छिटकी थी। पति-पत्नी का वार्तालाप चल रहा था। विश्वामित्र छिपकर वहाँ खड़े थे। उनकी बातें सुन रहे थे। वे आये थे वसिष्ठ को मारने के लिए। छिपकर विश्वामित्र बातें सुन रहे हैं, इसका वसिष्ठ को पता नहीं। पत्नी ने वसिष्ठ से कहा : "चाँदनी कितनी सुन्दर है!" वसिष्ठ बोले : "हाँ, बहुत सुन्दर है, विश्वामित्र की तपस्या के समान मनोहर है।" यह सुनते ही विश्वामित्र पिघल गये, उनसे रहा नहीं गया, वे एकदम सामने आये और वसिष्ठ के चरणों पर झुक गये। तब उनको ऊपर उठाते हुए वसिष्ठ ने कहा : "ब्रह्मर्षे, उत्तिष्ठ!" तब तक वसिष्ठ ने विश्वामित्र को 'ब्रह्मर्षि' नहीं कहा था, लेकिन जब विश्वामित्र ने नम्र होकर प्रणाम किया, तब वह संज्ञा वसिष्ठ ने उनको दी। वसिष्ठ क्षमा के लिए मशहूर हो गये। उनकी क्षमा की खूबी है। उन्होंने अपराध सहन किया, इतना ही नहीं, लेकिन जिसने अपराध किया था, उसके गुण का ही स्मरण करते रहे। दोष-ग्रहण किया ही नहीं, गुण-ग्रहण करते रहे। अपने पर उसने जो उपकार किया, उसे याद ही नहीं किया। यह जो सहज क्षमा है, यह बहुत बड़ी शक्ति है।

14. सच्चे हृदय की पुकार

एक पापी था। उसका नाम था अजामिल। उसके घर पुत्र पैदा हुआ तो न जाने किस प्रेरणा से उसने अपने पुत्र का नाम 'नारायण' रखा।

नारायण आलसी और ढीला था। वह बार-बार आवाज देने पर भी मुश्किल से ही जवाब देता था। अजामिल ने मरते समय 'नारायण-नारायण' कहकर पुकारा। वह नहीं आया। दुबारा और तिबारा पुकारने पर भी नहीं आया, तो उसने कहा : "यह जिसका वास्तविक नाम है, वही आ जाय"

सच्चे हृदय से पुकारने के कारण आखिर नारायण स्वयं उपस्थित हो गये!

अजामिल भगवान् के दर्शन कर कृतार्थ हो गया!

15. वस्तु का सहचारी-भाव

पुराने जमाने की बात है। एक सत्य-वक्ता, विशुद्धमना साधु वन में तप करते थे। उनके शांत तप के प्रभाव से वहाँ के पशु-पक्षी आपसी वैर-भाव भूल गये थे, जिससे पूरा वन एक आश्रम जैसा बन गया था।

जिंस तप के बल से वन-केसरी का स्वभाव बदल जाय, उससे इन्द्र का सिंहासन भी यदि डोलने लगे, तो इसमें आश्चर्य ही क्या? इन्द्र ने उस साधु का तप भंग करने का निश्चय किया। हाथ में तलवार ले, योद्धा का बाना बना, वे साधु के पास आये और विनती करने लगे : "क्या आप मेरी यह तलवार कृपा करके अपने पास धरोहर की भाँति रख लेंगे?"

न जाने साधु ने क्या सोचकर उनकी विनती मान ली। इन्द्र चले गये। साधु ने धरोहर सँभालकर रखने की जिम्मेवारी ली थी। वह दिन रात तलवार अपने साथ रखने लगे। देव-पूजा के लिए पुष्प आदि लेने जाते तो भी तलवार साथ होती। आरम्भ में उन्होंने विश्वास के नाते तलवार अपनायी थी, धीरे-धीरे तलवार पर उनका विश्वास जमता गया। तलवार नित्य साथ रखते-रखते तपस्या से श्रद्धा जाती रही। यह बात उनके ध्यान में भी न आयी। साधु क्रूर हो गया, इन्द्र का सिंहासन स्थिर और निर्भय हो गया। वन के हरिण डर के मारे काँपने लगे।

हर वस्तु के साथ उसका सहचारी भाव आता ही है। जैसे सूर्य के समीप उसकी किरणें, वैसे ही वस्तु के समीप उसका सहचारी भाव होता है।

16. पवित्रता का रहस्य

एक सज्जन ने एकनाथ महाराज से पूछा : "महाराज! आपका जीवन कितना सीधा-सादा, कितना निष्पाप है। हमारा जीवन ऐसा क्यों नहीं? आप कभी किसी पर गुस्सा नहीं होते, किसी से लड़ाई-झगड़ा नहीं, टंटा-बखेड़ा नहीं। कितने शांत, कितने प्रेमपूर्ण, कितने पवित्र हैं आप!"

एकनाथ ने कहा : "अभी मेरी बात छोड़ो। तुम्हारे सम्बन्ध में मुझे एक बात मालूम हुई है। आज से सात दिन के भीतर तुम्हारी मौत आ जायेगी।"

अब एकनाथ की बात को कौन झूठ मानता? सात दिन में मृत्यु! सिर्फ 168 घण्टे ही बाकी रहे। हे भगवन्, यह क्या अनर्थ! वह मनुष्य जल्दी-जल्दी घर दौड़ गया। कुछ सूझ नहीं पड़ता था। आखिरी समय की, सब कुछ समेट लेने की बातें कर रहा था। वह बीमार हो गया। बिस्तर पर पड़ गया। छह दिन बीत गये। सातवें दिन एकनाथ महाराज उससे मिलने आये। उसने नमस्कार किया। एकनाथ ने पूछा : "क्या हाल है?"

उसने कहा : "बस, अब चला।"

नाथजी ने पूछा : "इन छह दिनों में कितना पाप किया? पाप के कितने विचार मन में आये?"

वह आसन्न-मरणा व्यक्ति बोला : "नाथजी, पाप का विचार करने को तो फुरसत ही नहीं मिली। बस, मौत ही आँखों के सामने खड़ी थी।"

नाथजी ने कहा : "हमारा जीवन इतना निष्पाप क्यों है, इसका उत्तर अब मिल गया न?"

मरणरूपी शेर सदैव सामने खड़ा रहे, तो फिर पाप सूझेगा किसे? पाप करने के लिए भी निश्चिन्तता चाहिए। मरण का सदैव स्मरण रखना पाप से मुक्त होने का उपाय है। यदि मौत सामने दीखती रहे तो फिर मनुष्य किस बल पर पाप करेगा?

17. एकनाथ महाराज का सत्याग्रह

एकनाथ महाराज बहुत बड़े सत्याग्रही थे। एक बार वे स्नान करने के लिए नदी पर गये और स्नान करके वापिस लौटे तो रास्ते में एक व्यक्ति ने उनके ऊपर थूक दिया। उन्होंने दुबारा स्नान किया। उस व्यक्ति ने फिर उन पर थूका, तो उन्होंने फिर से स्नान किया। इस तरह वह थूकता गया और वे स्नान करते गये।

आखिर हारकर वह उनकी शरण आया। कितना अनुपम तरीका था, सत्याग्रह का।

18. जैसी दृष्टि वैसी सृष्टि

रामदास रामायण लिखते जाते और शिष्यों को पढ़कर सुनाते जाते थे। हनुमान भी गुप्त रूप से उसे सुनने के लिए आकर बैठते थे। समर्थ रामदास ने लिखा था : "हनुमान अशोक-वन में गये। वहाँ उन्होंने सफेद फूल देखे।"

यह सुनते ही वहाँ झट से हनुमान प्रकट हो गये और बोले—"मैंने सफेद फूल नहीं देखे, लाल देखे थे। तुमने गलत लिखा है। उसे सुधार लो।"

समर्थ ने कहा : "मैंने ठीक लिखा है। तुमने सफेद ही फूल देखे थे।"

हनुमान ने कहा : "मैं स्वतः वहाँ गया था और मैं ही झूठा?"

अंत में झगड़ा रामचन्द्रजी के पास गया। उन्होंने कहा : "फूल तो सफेद ही थे; परन्तु हनुमान की आँखें क्रोध से लाल हो रही थीं, इसलिए वे शुभ्र फूल उन्हें लाल दिखायी दिये।"

संसार की ओर देखने की जैसी हमारी दृष्टि होगी, वैसा ही वह हमें दिखायी देगा।

19. ज्ञानी का निवास

एक जमाने में अपने देश में बहुत विद्या थी। अब विद्या पूर्व से उड़कर पश्चिम में चली गयी है और वहाँ से उड़कर यहाँ आना चाहती है; लेकिन पुराने जमाने में विद्या का स्थान भारत माना जाता था। इसका संकेत करते हुए रवीन्द्रनाथ ने लिखा है :

"प्रथम प्रभात उदित तव गगने,
प्रथम सायरव तव तपोवने।"

उसी जमाने की यह कहानी है। एक था राजा। उसने ब्राह्मण का नाम सुन रखा था। वह ब्राह्मण बहुत ज्ञानी था। राजा ने अपने मंत्री से कहा : "उस ज्ञानी ब्राह्मण को ढूँढ़ लाओ। उसके चरणों में बैठकर मैं ज्ञान-चर्चा करूँगा। इससे मेरी ज्ञान-वृद्धि होगी।"

मंत्री सारा शहर घूम आया, उसे ज्ञानी न मिला।

राजा ने पूछा : "तुमने उसे कहाँ ढूँढ़ा ?"

मंत्री ने कहा : "सारे शहर में।"

राजा ने डाँटकर कहा : "भला ज्ञानी कहीं शहर में रहता है? जा किसी जंगल में खोज ।"

फिर वह मंत्री जंगल में चला गया। उजाड़ जंगल में एक गाँव था। गाँव के बाहर एक घनी छायावाला पेड़ था। पेड़ के नीचे एक बैलगाड़ी खड़ी थी। बैलगाड़ी की छाँव में एक आदमी बैठा था।

मंत्री ने पूछा : "राजा ने जिस ज्ञानी ब्राह्मण की खोज के लिए भेजा है, कया तुम वही ज्ञानी ब्राह्मण हो?"

वह बोला : "हाँ।"

फिर मंत्री ने राजा के पास आकर कहा : "ज्ञानी मिल गया महाराज ।"

राजा ने पूछा : “कहाँ मिला?”

मंत्री ने जंगल का वह स्थान बताया।

ऐसा था ज्ञान का निवास-स्थान!

20. कृष्णार्पण !

एक स्त्री थी। उसका निश्चय था कि मैं जो कुछ करूँगी, वह कृष्णार्पण कर दूँगी।

चौका लीप चुकने के बाद बची हुई गोबर-मिट्टी का गोला बनाकर बाहर फेंकती और कह देती "कृष्णार्पणमस्तु।"

वह गोबर का गोला वहाँ से उठता और मंदिर में भगवान् की मूर्ति के मुँह पर जा चिपकता।

पुजारी बेचारा मूर्तियों को धो-धोकर थक गया।

अन्त में मालूम हुआ कि वह करामात उस स्त्री की थी।

एक दिन वह स्त्री बीमार हो गयी। मरण की अन्तिम घड़ी आ पहुँची । उसने मरण को भी कृष्णार्पण कर दिया। उसी समय मंदिर की मूर्ति के टुकड़े-टुकड़े हो गये।

स्त्री को लेने के लिए ब्रह्मलोक से विमान आया।

उसने विमान को भी कृष्णार्पण कर दिया।

विमान जाकर मंदिर से टकराया और वह भी टुकड़े-टुकड़े हो गया।

श्रीकृष्ण के ध्यान के सामने स्वर्गीय शक्ति भी तुच्छ सिद्ध हुई।

21. भक्त की पूजा

एक बार उद्धव, भगवान् कृष्ण से मिलने आये।

उस समय भगवान् पूजा गृह में बैठे पूजा कर रहे थे।

उद्धव को कुछ देर प्रतीक्षा करनी पड़ी।

पूजा पूरी होने पर भगवान् उद्धव से मिले। उद्धव ने पूछा: "आप इतनी देर कया कर रहे थे?"

"पूजा कर रहा था।"

"किसकी ?"

"तुम नहीं जानते! यह हमारा रहस्य है।"

"नहीं जानता इसीलिए तो पूछ रहा हूँ। मुझसे छिपाकर क्या रखेंगे?"

"ठीक, तो सुनो, मैं तुम्हारी ही पूजा कर रहा था।"

22. कुल-धर्म की दीक्षा

एक ब्राह्मण का लड़का बारह साल का हो गया। पर गुरु के घर जाने की बात ही नहीं करता था। उन दिनों माता-पिता सोचते थे कि लड़के को स्वाभाविक इच्छा होगी, तब भेजेंगे। दूसरे लड़के आश्रम चले गये। एक दिन उसके पिता ने उसे प्रेम से बुलाकर कहा कि आज तक अपने कुल में नाममात्र का एक भी ब्राह्मण नहीं बना है। निरक्षर, निरभ्यास, अक्षरशून्य कोई भी ब्राह्मण नहीं हुआ। हमारे कुल में नामधारी ब्रह्मबन्धु यानी ब्राह्मण नहीं हुआ : "**न वै सौम्य, अस्मद्कुले नामब्रह्मबंधुरेव भवति**।" पिता को इससे ज्यादा नहीं कहना पड़ा; लड़का उठकर गुरु के घर पढ़ने चला गया।

किसी बेटे से कहा जाय कि तेरा बाप लड़ाई में प्रहार सहकर मर गया, तो पचासों उपायों या ग्रंथों से जो परिवर्तन न होगा, वह उस बात से होगा।

मनुष्य के चरित्र को प्रेरणा देनेवाली एक बलवान चीज है, कुल-धर्म।

23. श्रीकृष्ण की तालीम

भगवान् कृष्ण पन्द्रह वर्ष की उम्र तक खेतों में काम करते रहे, कुश्ती लड़ते रहे और मक्खन खाते रहे। बचपन में उन्होंने कंस-वध जैसा महान् कार्य किया। उसके बाद उनके पिता को लगा कि उन्हें विश्वविद्यालय की शिक्षा तो मिली ही नहीं। इसलिए एक दिन कृष्ण को संदीपन महर्षि के यहाँ भेज दिया गया।

कृष्ण संदीपन ऋषि के यहाँ 6 महीने रहे। इतने थोड़े समय में ही कृष्ण की चतुरता देखकर ऋषि आश्चर्य में पड़ गये। वे कहने लगे : "इसके पास जो ज्ञान है, वह तो मेरे पास भी नहीं है। इसने काम करते-करते ज्ञान प्राप्त किया है। और मैंने पुस्तक पढ़ते-पढ़ते।"

पुस्तकों में लिखा है कि डरना नहीं चाहिए, पर साँप दीखते ही हम डरने लगते हैं और पुस्तक भूल जाते हैं। लेकिन कृष्ण तो साँप के सिर पर नाचनेवाला है।

गुरु ने यह सब देखकर कृष्ण को छह महीने में ही प्रमाण-पत्र दे दिया।

24. परिस्थिति का विधि-निषेध

देश में अकाल पड़ा। लोग भूखों मर रहे थे। चारों ओर त्राहि-त्राहि मची थी। इसलिए राजा ने इन्द्र को प्रसन्न करने का अनुष्ठान किया।

राजा के अनुष्ठान में सम्मिलित होने के लिए एक ऋषि अपनी पत्नी के साथ चल पड़ा। रास्ते में भूख के मारे उसकी हालत खराब हो गयी। वह एक पेड़ की छाया में रुका, जहाँ कि एक चांडाल बैठा खाना खा रहा था।

ऋषि ने क्षणभर सुस्ताकर चांडाल से पूछा : "क्या मुझे भी खाने के लिए दोगे?"

"मैं कैसे दे सकता हूँ?" वह बोला—"यह जूठा है।"

ऋषि ने कहा : "जूठा है, तब भी कोई हर्ज नहीं।"

चांडाल ने उसमें से थोड़ा खाना दे दिया। फिर पूछा : "क्या पानी भी पियेंगे?"

"नहीं", ऋषि बोला—"वह तो जूठा है।"

इस पर आश्चर्यपूर्वक हँसते हुए उसने पूछा : "तब आपने जूठा खाना कैसे खा लिया?"

"इसलिए कि उसके बिना मैं जी नहीं सकता था!" ऋषि ने कहा। "पानी के बिना मैं अपना काम चला सकता हूँ!"

25. जो चाहो सो लो

एक मनुष्य कल्पवृक्ष के नीचे बैठा था। गर्मी के दिन थे। उसे प्यास लगी। उसके मन में विचार आया कि यहाँ थोड़ा पानी मिले तो अच्छा। उतने में एक घड़े में ठंडा, मीठा, निर्मल पानी आया! उसने पानी पी लिया। फिर उसके मन में विचार आया, यहाँ खाना मिल जाय तो कितना अच्छा हो। खाने की थाली भी सामने आ गयी। फिर सोचने लगा कि यहाँ सोने के लिए भी कुछ मिले तो बड़ा अच्छा हो। एक पलंग उसके सामने आ गया। तब वह सोचने लगा कि यह क्या चमत्कार है? यहाँ कोई भूत तो नहीं है? एकदम उसके सामने भूत खड़ा हुआ। उसके मन में आया कि यह भूत यदि मुझे खा जायेगा तो मैं क्या करूँगा? उसी समय भूत ने उसे खा डाला।

26. भगवत् निवास

एक योगी गुफा में बैठे भगवान् का ध्यान किया करते थे। वे कभी गाँव में नहीं आते थे। गाँव के लोग ही दोपहर में उनके लिए थोड़ा-सा भोजन पहुँचा दिया करते थे। वे खाना खाते और फिर खूब जोर से नाक दबाकर प्राणायाम-ध्यान आदि में लीन हो जाते थे। चार-चार छह-छह घंटे रोज आसन जमाने और नाक दबाने के बाद भी उन्हें कभी भगवान् के दर्शन नहीं हुए।

एक दिन योगी महाराज सोचने लगे कि मैं यहाँ एकान्त में बैठकर हर रोज इतनी देर ध्यान किया करता हूँ, फिर भी भगवान को मुझ पर दया नहीं आती ! आखिर बात क्या है?

चिन्तन चलता रहा। रात बीती। सुबह हुई। दोपहर हुई और वह भी ढल गयी। संयोग से उस दिन गाँववाले भी समय पर भोजन नहीं लाये। योगी महाराज की भूख भड़क उठी। वे आँख मूँदकर 'जगन्नाथ-जगन्नाथ' कहते तो थे, लेकिन बार-बार उनके ध्यान में रोटी आ जाती थी।

थोड़ी देर बाद रोटी आ गयी। योगी महाराज ने खा ली, तब रोटी लानेवाले की तरफ नजर उठायी। आज पहली बार रोटी लानेवाले का चेहरा देखने की प्रेरणा हुई। उसके चेहरे पर उन्हें जगन्नाथ की आकृति दिखाई दी। उन्होंने सोचा, अब तक मैं नाक और आँख बन्द रखता था तो भगवान् के दर्शन नहीं हुए और आज जब आँख-नाक खोले हैं, तो भगवान् दीख रहे हैं ! आखिर यह सब क्या है ?

चिन्तन-मग्न योगी महाराज सो गये। सपने में भगवान् आये और बोले : "देख, अब तू अकेले में बैठ कर भजन करना बंद कर दे। गाँव में जा। लोगों के साथ रह। उन सबके साथ मिलकर भजन-कीर्तन कर। इसी से मैं तेरे सामने प्रत्यक्ष हो जाऊँगा।"

योगी ने आँख खोलीं तो उसके मुँह से निकल पड़ा :

नाऽहं वसामि वैकुण्ठे, योगिनां हृदये न च।
मद् भक्ता: यत्र गायन्ति तत्र तिष्ठामि नारद!

27. लक्ष्मी का स्वयंवर

लक्ष्मी देवी का स्वयंवर था। कौन जानता था कि वह किसे वरेंगी ! सभी लोग अभिलाषा लेकर पहुँचे कि लक्ष्मी उनके गले में वरमाला डालेंगी।

लक्ष्मी मंडप में आयीं और बोलीं : "जिसे मेरी चाह नहीं है, मैं उसी को वरूँगी।"

स्वयंवर में जितने लोग आये थे, वे सब बेवकूफ साबित हुए।

सबको चुपचाप लौट जाना पड़ा।

लक्ष्मी अपना वर ढूँढ़ने निकलीं। वह खोजते-खोजते क्षीर-समुद्र में पहुँचीं, जहाँ विष्णु भगवान् योग-समाधि में निमग्न थे।

विष्णु ने लक्ष्मी को देखा ही नहीं। लक्ष्मी उनके चरण पकड़कर बैठ गयीं।

अभी तक वह वैसे ही बैठी हैं। न विष्णु उनकी ओर नजर उठाकर देखते हैं और न वे चरण छोड़ती है।

28. सुदामा के चावल

श्री कृष्ण से मिलने के लिए सुदामा द्वारिका पहुँचे। वे गरीब थे। फटे-पुराने वस्त्र पहने थे। कृष्ण ने अपने सखा को बड़े प्रेम से भीतर बुलाया, अपने आसन पर बिठाया और पूछा : "सखे, मेरे लिए क्या लाये हो?" दुनिया का बादशाह ! वैभव सम्पन्न ! उसने अपना हाथ फैलाया, ऐसे व्यक्ति के सामने जो फटे कपड़े पहने हुए इस आशा से आया था कि कुछ मिलेगा।

सुदामा सकपका गये। बेचारे क्या बोलते? पत्नी ने मुट्ठी भर चावल बाँध दिया था कि खाली हाथ नहीं जाना चाहिए। वह अपनी चावलों की पोटली छिपाने लगे। भगवान् ने उसे देखा तो छीन लिया। पोटली खोली और प्रसाद सेवन करना शुरू कर दिया। लक्ष्मी भगवान् के नजदीक बैठी हुई थीं। उन्हें लगा कि भगवान् सारे चावल खा लेंगे तो सारी दौलत खत्म हो जायेगी। अत: उन्होंने पोटली झपटकर आधा हिस्सा खुद खा लिया।

खाने के बाद-दोनों मित्रों में बातचीत हुई। भगवान् ने सुदामा को विदा कर दिया।

वापस जाते समय सुदामा मन में सोचने लगे, भगवान ने कुछ न देकर बहुत बड़ा उपकार किया है ! नहीं तो मैं सम्पत्ति के मोह में पड़ जाता ! प्रेम से बढ़कर दुनिया में कोई चीज नहीं है। इस तरह संतोष के साथ सुदामा अपने गाँव पहुँचे। देखते क्या हैं कि सारा गाँव सुवर्ण की नगरी बन चुका था। उन्हें लगा, गलती से मैं फिर द्वारिका ही तो नहीं पहुँच गया हूँ। द्वारिका के जैसा ही सारा वैभव !

सुदामा असमंजस में पड़े सोच रहे थे कि महलों में से पत्नी स्वागत करने निकली। सारे ठाट-बाट के बीच भी अपनी पत्नी की आवाज पहचान कर सुदामा ने सोचा, पत्नी तो मेरी ही लगती है ! वह बोली "भगवान् की कृपा से अपनी हालत बदल गयी है।"

सुदामा ने कहा : "यह सारी भगवान् की दौलत है। हमें इसका उपभोग बहुत ही सोच-समझकर करना चाहिए।"

29. श्रेष्ठ भक्त कौन?

देवर्षि नारद ने भगवान् से पूछा : “क्या मुझसे भी बढ़कर कोई भक्त है?”

“इसका उत्तर तो बाद में दिया जायेगा,” भगवान ने कहा—“पहले एक काम करो। यह तेल से भरा हुआ पात्र लो और इस गाँव की पूरी प्रदक्षिणा कर आओ। इसमें से एक बूँद भी तेल नीचे नहीं गिरना चाहिए।”

नारद प्रदक्षिणा करके लौटे तो भगवान् ने पूछा : “इतने समय में मेरा स्मरण कितनी बार हुआ?”

नारद ने कहा : “मेरा सारा ध्यान इसमें था कि तेल की एक बूँद भी न गिरे। मैं दो घोड़ों पर सवार कैसे हो सकता था?”

भगवान् बोले : “अब तुम्हीं बताओ कि गृहस्थ घर और संसार के बोझ से लदा होकर भी यदि समय निकालकर घड़ी भर मेरा स्मरण कर लेता है तो श्रेष्ठ कौन है?”

30. आजादी का रहस्य

किसी राक्षस ने एक मनुष्य को पकड़ा।

राक्षस मनुष्य से खूब काम लेता था, यह कहकर कि "काम नहीं करोगे तो खा जाऊँगा।"

बेचारा मनुष्य डर के मारे काम में लगा रहता था।

आखिर मनुष्य थक गया। तंग आकर एक दिन राक्षस से कह दिया : "लो बाबा, खाना हो तो खा जाओ।"

राक्षस उसे खाना नहीं चाहता था, वह तो डराकर काम लेना चाहता था। डर मिटते ही मनुष्य की सारी तकलीफ खतम हो गयी।

अब वह आजाद था।

31. आश्रय

महाभारत के समय एक बार सारे सर्प मारे गये। सिर्फ तक्षक इन्द्र के पीछे छिपा रहा। इसलिए वह नहीं मारा जा सका।

"तक्षकाय स्वाहा" कहने से भी तक्षक नहीं आया, क्योंकि उसे इन्द्र का बल मिल गया था।

अन्त में "इन्द्राय तक्षकाय स्वाहा" कहा गया।

इससे इन्द्र तो नहीं ही मरा, क्योंकि वह अमर था, परन्तु तक्षक भी अमर हो गया।

32. राजा का रूप

एक बार मेढकों ने भगवान् से प्रार्थना की : “हे भगवान्, हमारे लिए कोई राजा भेज दो।”

भगवान् ने प्रार्थना सुन ली और एक बैल भेज दिया।

बैल के पाँव के नीचे दबकर 40-50 मेढक मर गये।

“हमें ऐसा राजा नहीं चाहिए”, मेढकों ने फिर प्रार्थना की—“और कोई दूसरा राजा भेजिये।”

भगवान् ने एक बड़ा भारी पत्थर ऊपर से नीचे फेंक दिया। उसके नीचे दबकर 400-500 मेढक खतम हो गये।

मेढक बहुत घबराये। उन्होंने कहा : “यह क्या आफत डाल दी?”

भगवान् ने हँसते हुए जवाब दिया : “हमने जो बैल भेजा था वह हमारा वाहन है, पर उससे आपका काम नहीं बना, तो हमने स्फटिक शिला भेजी, जिसपर हम हमेशा आसन लगाकर बैठते हैं, वह भी आपको अच्छी नहीं लगी। इसलिए बिना राजा के ही आपका काम अच्छा चलेगा, यह समझ लीजिये।

तब से मेढकों ने राजा का नाम लेना छोड़ दिया।

33. आरोग्य का नुस्खा

एक डॉक्टर के पास एक गरीब बीमार पहुँचा।

डॉक्टर ने उसे खूब खिलाया-पिलाया और मजबूत बनाकर भेज दिया।

डॉक्टर की कीर्ति सुनकर एक श्रीमान बीमार भी उसके पास पहुँचा।

डॉक्टर ने उससे कुछ दिन फाके करवाये और फिर घी-शक्कर तथा आटा खाने की मनाही कर दी, सिर्फ तरकारी खाने के लिए कहा।

“सिर्फ तरकारी खाना? क्या मैं भैंस हूँ?” श्रीमान बहुत ही बिगड़कर बोला—“तुम गरीब मरीजों पर प्रेम करते हो, उन्हें लड्डू खिलाते हो और मेरे साथ ऐसा व्यवहार करते हो?”

“तुम पर भी प्रेम करता हूँ।” डॉक्टर ने जवाब दिया—“तुम्हारे शरीर का वजन बहुत बढ़ गया था इसलिए घी-शक्कर की मनाही करना और तुम्हारा वजन घटना ही तुम पर प्रेम करना है। किसी गरीब को खाना न मिलता हो तो उसे अच्छी तरह खिलाना ही उस पर प्रेम करना है।

34. सफल चोर : असफल चोर

एक डाकू को पकड़कर सिकन्दर के सामने लाया गया।

सिकन्दर ने पूछा : “तू कया करता है?”

डाकू ने जवाब दिया : “तू जो करता है, वही मैं करता हूँ।”

“तेरी और मेरी बराबरी क्या है?” सिकन्दर ने कहा--'मैं तो बादशाह हूँ।”

डाकू बोला : “तू जो काम करता है, वही मैं करता हूँ। तू सफल हुआ और मैं असफल। चोर तू भी है और मैं भी। फर्क इतना ही है कि तू सफल चोर है, इसलिए लोगों के सिर पर बैठा है और मैं असफल चोर हूँ इसलिए तेरे सामने खड़ा हूँ। फिर भी तू यह भलीभाँति समझ ले कि तेरी और मेरी योग्यता समान है।”

सिकन्दर यह सुनकर मौन हो गया।

35. हस्तामलक

शंकराचार्य अपने शिष्यों को रोज ब्रह्म-विद्या पढ़ाते थे। एक दिन जब वे पढ़ा रहे थे, तो एक भाई उनसे मिलने आये और उन्होंने पूछा : “आपके शिष्यों में अधिक विद्या किसको प्राप्त हुई है?”

“अधिक विद्या जिसको प्राप्त हुई है वह विद्यार्थी इस समय पानी भर रहा है।” शंकराचार्य ने जवाब दिया—“आप उधर जाकर उससे मिल सकते हैं।”

आश्चर्य में डूबा हुआ प्रश्नकर्ता उधर मुड़ा ।

पानी का घड़ा लिये हुए विद्यार्थी को आते देखकर उसने पूछा : “आपका नाम क्या है?”

घड़ा रखते हुए विद्यार्थी ने कहा : “हस्तामलक”।

प्रश्नकर्ता का सिर श्रद्धा से उसके चरणों में झुक गया।

जिसे सबसे अधिक विद्या प्राप्त हुई है, वह कितना श्रमनिष्ठ, स्वावलम्बी और नम्र है, यह हस्तामलक की भाँति स्पष्ट है।

36. आकांक्षा

सिकन्दर का एक पदार्थ-संग्रहालय था। उस संग्रहालय में कई महापुरुषों के पुतले खड़े किये गये थे और उनके नीचे हर एक का नाम लिखा हुआ था।

एक दिन सिकन्दर के यहाँ एक मेहमान आया। उसे संग्रहालय दिखाया गया और हर एक मूर्ति का परिचय दिया गया।

सारा देखने-सुनने के बाद मेहमान ने पूछा : "इतने पराक्रमी लोगों में आपकी मूर्ति तो कहीं नहीं दीखती ?"

"नहीं ।" सिकन्दर ने कहा—"मेरी मूर्ति खड़ी की जाय और उसके नीचे मेरा नाम लिखा रहे, तो फिर लोग पूछेंगे कि यह सिकन्दर कौन था? इसके बजाय बेहतर यही है कि यहाँ मेरी मूर्ति न रहे और लोग बराबर यही पूछें कि सिकन्दर की मूर्ति क्यों नहीं है? "मैं ऐसा पूछा जाना ही अधिक पसन्द करूँगा।"

सिकन्दर का जवाब सुनकर मित्र का मन खुश हो गया।

37. याद

एक दाढ़ीवाला व्यक्ति कीर्तन कर रहा था। उसके सामने एक किसान बैठा था। कीर्तन सुनते-सुनते किसान की आँखों में आँसू आ गये।

कीर्तन करनेवाले को लगा कि कितनी इसकी एकाग्रता है, कितना स्वच्छ, निर्मल चित्त है कि भगवान् की याद आते ही गद्गद् हो गया!

उसने किसान से पूछा : "भाई! तुम्हारी आँखों में आँसू कैसे आये?"

किसान ने जवाब दिया : "महाराज, मेरे पास एक बकरा था। उसकी दाढ़ी भी आपकी दाढ़ी जैसी ही थी। वह अभी कुछ ही दिन पडले मर गया। आपकी दाढ़ी देखकर मुझे उसकी याद आ गयी।"

38. खलीफा उमर

खलीफा उमर का एक भाई के साथ द्वंद चल रहा था। दोनों मजबूत थे। आखिर लड़ते-लड़ते खलीफा उमर की फतह होने के आसार दीखने लगे।

एक मौका ऐसा आया, जब उसकी छाती पर खलीफा चढ़ बैठे। तलवार ऊपर उठा ली, उसे मारनेवाले ही थे कि इसी बीच उस शख्स ने, जिसकी छाती पर वे बैठे थे, उनके मुँह पर थूका।

दूसरे ही क्षण खलीफा उमर ने अपनी तलवार खींच ली और वे उठ गये।

साथियों ने उनसे पूछा : "यह आपने क्या किया? अच्छी तरह आपके हाथ में आ गया था, कत्ल करने के बजाय उसे ऐसे ही क्यों छोड़ दिया?"

इस पर उमर ने जवाब दिया : "जब उसने थूका, तो मुझे गुस्सा आ गया और गुस्सा आ जाने से वह धर्मयुद्ध नहीं रहा। इसलिए मैंने उसे छोड़ दिया।"

39. तीर्थ-स्नान और पवित्रता

एक अमीर यात्रा के लिए निकला। उसके साथ एक गरीब नौकर था, जो रसोई बनाकर खिलाता था। उस अमीर ने 2-4 साल घूमकर सारे भारत की यात्रा की। सब तीर्थों में नहाकर अन्त में घर पहुँचा, तो उसके नौकर ने उसे एक ऐसी तरकारी खिलायी, जिससे बहुत बदबू आती थी।

मालिक ने पूछा : "तुमने क्या खिलाया?"

नौकर ने जवाब दिया : "मैंने आपको बड़ी पाक तरकारी खिला दी। जब हम यहाँ से निकले थे, तो अपने साथ कुछ आलू लेते गये। जैसे आपने हर तीर्थ में स्नान किया, वैसे ही मैंने आलू को भी हर तीर्थ में नहलाया। गंगा में डुबोया, जमुना में डुबोया, कावेरी में डुबोया और फिर उस आलू को तरकारी आपको खिलायी, जो गन्दी नहीं, बल्कि पाक है। आप सब तीर्थों में स्नान कर चुके हैं तो क्या गंदे हैं?"

सुनते ही मालिक समझ गया कि इसने मुझे सबक सिखाया कि तीर्थों में नहाने से कोई पाक नहीं बनता। पचासों तीर्थों में नहाना एक बात है और दिल का पाक होना दूसरी बात।

40. न जीने की सुविधा, न मरने का ठौर

एक आदमी था। उसे अपना घर अमंगल प्रतीत होने लगा । वह गाँव में चला गया। वहाँ उसे गन्दगी दिखाई दी, तो जंगल में चला गया। जंगल में एक आम के पेड़ के नीचे बैठा ही था कि एक पक्षी ने उसके सिर पर बीट कर दी।

“यह जंगल भी अमंगल है।” ऐसा कहकर वह नदी में आ खड़ा हुआ। नदी में उसने देखा कि बड़ी मछलियाँ छोटी मछलियों को खा रही हैं। उसे बड़ी घृणा हुई। उसने सोचा, यह तो सारी सृष्टि ही अमंगल है। यहाँ मरे बिना छुटकारा नहीं है, ऐसा सोचकर वह पानी से बाहर निकला और उसने चिता जलायी।

तभी एक सज्जन आये और बोले : “भाई, यह मरने की तैयारी क्यों ?”

उत्तर मिला : “यह संसार अमंगल है, इसलिए”

उस सज्जन ने कहा : “तेरा यह गन्दा शरीर और चरबी आदि जलने लगेगी तो यहाँ कितनी बदबू फैलेगी? पास में ही हम लोग रहते हैं। हम सब कहाँ जायँगे ? एक बाल जलने से कितनी दुर्गन्ध होती है? फिर तेरी तो सारी चरबी जलेगी ?”

वह आदमी परेशान होकर बोला : “इस दुनिया में न जीने की सुविधा है, न मरने की जगह।”

41. नौकर बनाम मालिक

एक व्यापारी था। उसके एक ही लड़का था। लाड़-प्यार में वह पढ़ा नहीं। उसमें अकल भी कम थी। व्यापारी मर गया तो लड़के ने दूकान की देखभाल के लिए एक मुनीम रखा।

मुनीम समझदार था। इसलिए वह जो कुछ भी कहता, लड़के को मान लेना पड़ता था। कभी वह नहीं मानता तो मुनीम धमकाता था कि मैं नौकरी छोड़कर चला जाऊँगा। बस, इस धमकी से लड़का घबरा जाता। वह डरता था कि मुनीम नहीं रहेगा तो दूकान डूब जायेगी ।

मुनीम के रूप में रखा हुआ वह नौकर वैसा ही मालिक हो गया, जैसे आज निर्वाचित लोग मंत्री के रूप में मालिक बन बैठते हैं।

42. दसवाँ कौन?

दस लड़के थे। मुसाफिरी के लिए निकले। एक मील गये होंगे कि कहने लगे : “हम लोग कितने हैं, जरा गिनती तो कर लें !”

एक लड़का गिनने लगा : “एक...दो...तीन...सात...आठ...नौ।” गिनती रुक गयी। वह बोला : “अरे, दसंवाँ कहाँ गया ?”

दूसरे ने सोचा : “शायद इसने गिनती में गलती की हो, इसलिए मैं ही गिनकर देख लूँ।”

उसने गिना, तब भी संख्या नौ से आगे नहीं बढ़ी।

सब ने गिना और सर्वसम्मति से यह मान लिया गया कि यहाँ नौ व्यक्ति ही हैं। एक कहीं छूट गया है। अब कया किया जाय?

“को दशमः?” दसवाँ कौन है यह कैसे पता चल सकता था, क्योंकि गिनती करनेवाला हरएक अपने-आपको भूल जाता था!

43. हीरे की कीमत

एक किसान के लड़के को हीरा मिला। चमकीला पत्थर समझकर वह उससे खेलने लगा। उसके साथी ने देखा तो कहा : "यह पत्थर मुझे दे दो।" उसने नहीं दिया। इससे वह लड़का रोते-रोते अपने बाप के पास गया और बोला : "मुझे हीरा चाहिए।"

बाप ने पूछा : "हीरा कया चीज है?"

उसने कहा : "एक चमकीला पत्थर है।"

बाप उस लड़के के पिता के पास पहुँचा और पचास रुपये देकर वह हीरा ले आया।

थोड़े दिनों बाद 500 रुपये देकर उसका पड़ोसी अपने लड़के के खेलने के लिए उसे ले गया।

इस तरह उस हीरे की कीमत बढ़ते-बढ़ते एक लाख रुपये हो गयी !

जिसने उसे एक लाख रुपये में खरीदा, क्या उसका एक समय भी उस हीरे से पेट भर सकता है? अनाज, दूध, घी और मक्खन की तुलना कौन-सा हीरा कर सकता है?

44. माँ की ममता

एक स्त्री के पाँच पुत्र थे। पाँचों खेलने निकले। उनमें से एक कहीं खो गया। माँ बहुत परेशान हुई। ढूँढने निकली। चारों भाइयों को भी तलाश में भेजा। लेकिन वह नहीं मिला। माँ रात-दिन उसका नाम ले-लेकर रोने लगी।

आखिर किसी तरह वह लड़का मिला। माँ खुश हो गयी। माँ की प्रसन्नता देखकर उन चारों लड़कों ने पूछा : "हम चारों तुम्हारे पास थे, तब तुम्हें उतनी खुशी नहीं थी, जितनी अब है। इसका क्या कारण है? तुम भी पक्षपात करती हो?"

माँ ने जवाब दिया : "इसमें पक्षपात नहीं, ममता है। अभी तुम लोग माँ का दिल नहीं पहचानते ! तुम चारों मेरे पास थे तो सुखी थे। लेकिन जो मेरे पास नहीं था, वह दुखी था। उसका दुःख दूर हुए बिना मुझे संतोष केसे मिलता?"

45. जैसी करनी वैसी भरनी

एक योगी और एक वेश्या आमने-सामने रहते थे। योगी के घर में योगी का ढंग चलता था, और वेश्या के घर में उसका ढंग चलता था। दोनों की मृत्यु एक ही दिन हुई। उन्हें ले जाने के लिए ऊपर से दूत आये।

विष्णुदूत वेश्या को लेकर स्वर्ग की ओर चले।

यमदूत योगी को लेकर नरक की ओर चले। योगी सोचने लगा : "यह कैसा अन्याय है। यह तो वैसा ही है, जैसे पोस्ट ऑफिस से कई दफा एक का पत्र दूसरे के पास चला जाता है। यमदूतों को वेश्या के घर जाना चाहिए था, सो वे मेरे घर आये और विष्णुदूतों को मेरे घर आना चाहिए था, सो वे उधर गये ! यह तो अन्धेर है।" तब दूतों ने उससे कहा : "हमारे यहाँ अन्धेर नहीं, प्रकाश ही है। यहाँ कुछ भी गड़बड़ नहीं होती, हर एक का ठीक-ठीक रेकार्ड रखा जाता है। तुम जरा नीचे देखो।"

विमान में बैठे योगिराज ने नीचे देखा, धरती पर उसके शरीर को सजाया गया था और उसका जुलूस निकाला गया था। रामधुन गाते हुए सब लोग उस शरीर को श्मशान की ओर ले जा रहे थे। वहाँ पर उसके लिए चंदन की चिता तैयार थी। दूतों ने उससे कहा : "देखो, तुम्हारे लायक फल तुम्हें मिला।" उसने दूसरी तरफ देखा, तो उधर वेश्या की लाश को किसी ने उठाया तक नहीं था, इसलिए गीध और कुत्ते उसे फाड़-फाड़कर खा रहे थे।

दूतों ने कहा : "वेश्या के शरीर ने बुरा काम किया, इसलिए उसे उसका फल मिला। तुम्हारे शरीर ने अच्छा काम किया, इसलिए तुम्हें अच्छा फल मिला। परन्तु मन की बात देखो। तुम शरीर से भक्ति करते थे, लेकिन तुम्हारे मन में क्या था? तुम यही सोचते रहते थे कि उधर वेश्या के घर में कैसा सुन्दर संगीत और नृत्य चल रहा है, वहाँ बड़ा मजा होता है। मेरा जीवन तो नीरस है। उधर वेश्या यद्यपि शरीर से बुरा कर्म करती थी, फिर भी मन में हमेशा यही सोचती रहती थी कि

सामने योगी के यहाँ कितना अच्छा भजन चल रहा है। मैं कितनी पापी हूँ, जो भजन नहीं करती। मैं इस जीवन से ऊब गयी हूँ। परन्तु मुक्त नहीं हो पाती हूँ!"

"भगवान् तो मन को जानते हैं और उसके अनुसार फल देते हैं। दोनों को उनके अनुरूप फल मिल रहे हैं न?"

योगिराज यह बात सुनते ही चुप हो रहे!

46. मेरी मेरी का फेर

दो भाई थे।

दोनों का आपस में बहुत प्रेम था।

वे देवों के लिए भी अपराजित थे।

देवों ने उन्हें मोहित करने के लिए एक अप्सरा भेजी।

दोनों भाई अप्सरा पर मोहित हो गये। वे एक-दूसरे से कहने लगे : “यह मेरी है और मैं इसका स्वामी हूँ।”

बात बढ़ी ।

दोनों आपस में लड़ पड़े।

इसकी गदा उसके सिर पर और उसकी गदा इसके सिर पर।

“मेरी-मेरी” के फेर में पड़कर दोनों मौत की गोद में सो गये!

47. आचरण का असर

एक सज्जन थे। वे जहाँ भी जाते, साइकिल पर जाते थे। उनके लड़के ने उनका अनुसरण करना शुरू कर दिया। उसे पैदल चलने के लिए कितना ही कहा गया, पर वह नहीं माना।

पिता ने पूछा : "तू सदा यह कया करता है?" भगवान् ने पैर किस लिए दिये हैं?"

लड़के ने जवाब दिया : "साइकिल चलाने के लिए।"

पिता ने कहा : "यत्र पाँव, तत्र साइकिल, इस तरह करोगे तो कैसे चलेगा?"

"जेसे आपका।"

लड़के का जवाब सुनते ही पिताजी अपनी भूल समझ गये।

48. यह है बहुमत !

एक माँ थी। वह अंधी थी। उसके चार पुत्र अन्धे थे। पाँचवाँ पुत्र अन्धा नहीं हुआ था। उसे सब कुछ दिखाई देता था। वह अक्सर माँ से कहता था : "मुझे यह दीखता है, वह दीखता है।"

माँ ने सोचा : "जरूर इसकी आँखों में कहीं न कहीं खराबी है या इसका दिमाग बिगड़ गया है।" वह उसे डॉक्टर के पास ले गयी और बोली : "डॉक्टर साहब ! मेरे लड़के का कुछ बिगड़ा है। इसे जरा दुरुस्त तो कर दीजिये।"

माँ अन्धी, चारों लड़के भी अन्धे। उन सबको देखकर डॉक्टर ने पाँचवें की आँखों का ऑपरेशन किया और उसे भी अन्धा बना दिया।

जब उसे भी दीखना बन्द हो गया तो माँ और भाइयों ने सोचा कि वह ठीक हो गया है।

49. आश्रम-वृत्ति

रामकृष्ण आश्रम में एक कार्यकर्ता गये। उनको एक आश्रमवासी, जो वहाँ पाँच साल से रहता था, दिखायी दिया।

कार्यकर्ता ने पूछा : "कहिये, कैसा चल रहा है?"

"बहुत सुन्दर काम चल रहा है।" उसने कहा – "अब 10-15 लोग हमारी बातें सुनने के लिए आ जाते हैं।"

उसका जवाब सुनकर कार्यकर्ता ठंडा पड़ गया। 5-5 साल तक काम करने पर भी कुल 10-15 लोग सुनने के लिए आते हैं ! फिर भी यह भला आदमी कहता है कि 'बहुत अच्छा चल रहा है।'

निकट का परिचय करने पर कार्यकर्ता को पता चला कि इसी वृत्ति के कारण यह आश्रमवासी मोटा-ताजा है। उस आश्रमवासी को इस बात का संतोष था कि मैं नित्य काम करता हूँ, इसलिए एक न एक दिन परिणाम होगा ही।

50. प्रतिबोध

एक बार भगवान् बुद्ध के शिष्यों ने एक आदमी को भगवान् के सामने उपस्थित किया और निवेदन किया : "इस आदमी की आत्मा को कुछ बोध दीजिये।"

भगवान् बुद्ध ने उसे भोजन कराने की आज्ञा दी।

पहले उस आदमी का चेहरा उतरा हुआ था। जब वह पेटभर भोजन पा चुका और आराम भी कर चुका, तब उसको फिर भगवान् के सामने उपस्थित किया गया।

बुद्ध ने उसे जाने के लिए कहा।

शिष्यों को आश्चर्य में डूबे हुए देखकर भगवान् बोले : "भूखे को खिलाना ही सबसे बड़ा बोध है।"

51. असलियत

एक सत्पुरुष ने भक्ति के लिए एक मंदिर बनवाया। लेकिन उसने देखा कि वहाँ हिन्दू तो आते हैं, पर मुसलमान नहीं आते।

उसने मंदिर की जगह मस्जिद बना दी।

मस्जिद में मुसलमान आने लगे और हिन्दुओं ने आना छोड़ दिया। वह संत पुरुष दुःखी होकर सोचने लगा कि आखिर सबके भले के लिए करना क्या चाहिए? तब उसने मस्जिद भी तोड़कर शौचालय बना दिया।

बादशाह के पास खबर पहुँची। उन्होंने सन्त पुरुष से ऐसा करने का कारण पूछा।

उसने जवाब में कहा : "मंदिर में एक नहीं आता तो मस्जिद में दूसरा नहीं आता। अतः आखिर में शौचालय बनाना ही मुझे सबसे अच्छा रास्ता दिखाई दिया।"

संत का वचन सुनकर बादशाह मुस्करा दिया।

52. भ्रम-निरसन

शंकराचार्य काशी जा रहे थे। उसी रास्ते से एक चाण्डाल भी चला जा रहा था। आचार्य ने उसे हट जाने को कहा।

चाण्डाल ने पूछा : “महाराज, अपने अन्नमय शरीर से मेरे अन्नमय शरीर को हटाना चाहते हैं या अपने में स्थित चैतन्य से मेरे अन्दर के चैतन्य को? शरीर किसी का भी हो, ‘वह गन्दगी की गठरी’ है। आत्मा तो सर्वत्र एक और अत्यन्त शुद्ध है, ऐसी स्थिति में अस्पृश्यता किसकी और किसके लिए?”

इतना कहकर ही वह चाण्डाल चुप नहीं रहा, उसने फटकार आगे बढ़ायी : “गंगाजल के चन्द्रमा और हमारे हौज के चन्द्रमा में कुछ अन्तर है? सोने के कलसे के आशा में और हमारे मिट्टी के घड़े के आकाश में कुछ फर्क है? सर्वत्र आत्मा एक ही है न? फिर यह ब्राह्मण और अन्त्यज का भेद आपने कहाँ से निकाला?”

“विप्रोऽयं श्वपचोऽयमित्यपि महान् कोऽयं विभेदभमः?"

आचार्य के कान ही नहीं, वरन् आँखें भी खुल गयी और नम्रता से उसे नमस्कार करके बोले : “आप जैसा मनुष्य, फिर चाहे वह चाण्डाल हो या ब्राह्मण, मेरे लिए गुरु स्थानीय है।”

53. मैं बुद्धू ही अच्छा हूँ

एक दफा रामकृष्ण परमहंस की इच्छा हुई कि उन्हें कोई न कोई विद्या प्राप्त करनी चाहिए। उन्होंने कालीमाता से प्रार्थना की "हे माता, अपने इस बालक को बुद्धू न रहने दे, कुछ विद्या दे।"

कालीमाता ने सपने में दर्शन दिया और बोली: "देख, तेरे सामने जो घूरा पड़ा हुआ है, उसमें भरपूर विद्या पड़ी है। मनचाही ले ले।"

रामकृष्ण बोले : "घूरेवाली विद्या मुझे बिलकुल नहीं चाहिए। मैं बुद्धू ही अच्छा हूँ।"

54. एतबार

स्वामी रामतीर्थ अमेरिका जा रहे थे। बंदरगाह नजदीक आ रहा था। हर कोई अपना सामान इकट्ठा करने लगा, लेकिन वे ऐसे ही बैठे रहे और देखते रहे कि दूसरे लोग सामान कैसा इकट्ठा करते हैं, दौड़ते हैं।

बंदरगाह आया। जहाज किनारे लगा। उन्होंने देखा, बहुत बड़ा समूह वहाँ खड़ा था। रिश्तेदार आये हुए लोगों को 'रिसीव' कर रहे थे। इतना हो-हल्ला वहाँ हो रहा था। लेकिन वे ऐसे ही देखते रह गये, शांत ! मौन !

इतने में एक जवान अमेरिकन युवती यहाँ आयी। उन्हें देखकर उसे लगा कि कैसा अजीब जानवर है, इसे कोई ख्वाहिश, तमन्ना है या नहीं?

उससे रहा नहीं गया और उनके पास जाकर पूछ बैठी : "आप कहाँ से आये हैं और कौन हैं?

स्वामीजी ने जवाब दिया : "मैं हिन्दुस्तान का फकीर हूँ।"

"क्या यहाँ आपकी किसी से वाक्फियत है?"

"जी हाँ!"

"किससे है?"

"आपसे !"

"फिर आप मेरे घर चलेंगे?"

"जी हाँ !"

बस, यह वार्तालाप उनके बीच हुआ और वे उसके घर ठहरे !

यह जो एतबार है : मनुष्य का मनुष्य पर, वही प्रेम को खींचता है। प्रेम तो बिजली है। उस प्रेम से, उस बिजली से हर दिल भरा है। लेकिन एतबार कहाँ है? इसलिए वह प्यार काम नहीं आता। इसलिए मन में जो शक-शुबहा है, वह हम छोड़ें और पूरा एतबार रखें, तो प्यार दिल से बाहर आयेगा।

एतबार में बहुत बड़ी ताकत छिपी है।

55. 'भी' का सिद्धांत

एक बार एक गृहस्थ एक साधु के पास गया और उसने उससे पूछा : "मोक्ष-प्राप्ति के लिए कया घर-बार छोड़ना आंवश्यक है?" साधु ने कहा : "नहीं तो। देखो, जनक जैसों ने जब राजमहल में रहकर मोक्ष प्राप्त कर लिया, तो फिर तुम्हें घर छोड़ने की क्या आवश्यकता है?"

फिर दूसरा मनुष्य आयाऔर साधु से उसने पूछा : "स्वामीजी, घर-बार छोड़े बिना मोक्ष मिल सकता है?" साधु ने कहा : "कौन कहता है? घर में रहकर मुफ्त में ही मोक्ष मिलता होता, तो शुक जैसों ने जो घर-बार छोड़ा, तो क्या वे मूर्ख थे?"

बाद में उन दोनों मनुष्यों की जब एक-दूसरे से मुलाकात हुई, तो दोनों में बड़ा झगड़ा मचा। एक कहने लगा : "साधु ने घर-बार छोड़ने के लिए कहा है।" दूसरे ने कहा : "नहीं, उन्होंने कहा है कि घर-बार छोड़ने की आवश्यकता नहीं है।" तब दोनों साधु के पास आये। साधु ने कहा : "दोनों का कहना ठीक है। जैसी जिसकी भावना, वैसा ही उसका मार्ग और जिसका जैसा प्रश्न, वैसा ही उसका उत्तर। घर छोड़ने की जरूरत है, यह 'भी' सत्य है और घर छोड़ने की जरूरत नहीं हैं, यह 'भी' सत्य है।"

इसी को कहते हैं 'भी' का सिद्धान्त।

56. शब्द-पूजक

पिता-पुत्र कहीं जा रहे थे। सुबह हुई। सूरज निकला। धूप तेज होती गयी। पुत्र ने छाता लगा लिया।

पिता ने कहा : “छाता जरा पूरब की ओर रखा करो।”

पुत्र ने वैसा ही किया। दोनों की धूप से रक्षा हो गयी !”

वह लड़का शाम को अकेला घूमने निकला। साथ में छाता तो था ही। सूरज पश्चिम की ओर था, तब भी उसने छाता पूरब की ओर ही रखा, क्योंकि पश्चिम की ओर रखने से पिता की आज्ञा भंग होने का भय था।

आने जानेवाले लोगों ने उसे छाते को ठीक तरह लगाने के लिए कहा लेकिन वह नहीं माना।

शब्द-पूजक पुत्र सत्य को समझ नहीं पा रहा था, आखिर पिता को ही उसे फिर सीख देने के लिए आना पड़ा।

57. सही समझ

धनी बाप का बेटा खेलने निकला। दोपहर की चिलचिलाती धूप में पाँव जलने लगे। सूर्य नारायण उसे दुश्मन से लगने लगे। आखिर था तो धनवान् का ही बेटा ! दिमाग का बड़ा तेज ! उसने तरकीब ढूँढ़ निकाली कि सारी जमीन पर चमड़ा बिछा दिया जाय, जिससे किसी के पाँव न जलें। उसने पिताजी के सामने यह बात रखी। बाप को बेटे की बुद्धि पर आश्चर्य तो हुआ, पर हँसकर कहा : "अरे पागल, सारी पृथ्वी को चमड़े की साड़ी पहनाने की अपेक्षा तू खुद ही अपने पैरों में जूते पहन ले, तो तेरा मनोरथ पूरा हो जायेगा।"

बेटे को सही समझ मिल गयी।

58. आत्म विश्वास

एक ब्राह्मण यज्ञ के लिए एक बकरा ले जा रहा था। रास्ते में उसे तीन ठग मिले। उन्होंने ब्राह्मण से वह बकरा हथियाने की योजना बनायी । वे एक-एक फर्लांग के फासले पर खड़े हो गये।

ब्राह्मण जैसे ही पहले के निकट से गुजरा वह पूछ बैठा : "पंडितजी, यह कुत्ता लेकर आप कहाँ जा रहे हैं?"

ब्राह्मण फलाँग भर आगे बढ़ा कि दूसरा ठग आगे आकर बोला : "पंडितजी, गोड़ लागी, आज आप सुबह-सुबह कुत्ता लेकर कहाँ जा रहे हैं, क्या लोगों को कटवाना है?"

ब्राह्मण झिझका। उसने ऊपर से नीचे तक देखा और जब विश्वास हो गया कि यह बकरा ही है, तो आगे बढ़ा।

अब तीसरा ठग सामने आया और कुत्ता ले जाने के कारण ब्राह्मण को खूब भला-बुरा कहने लगा।

अब तो हद हो गयी। बकरे को वहीं पटककर ब्राह्मण चलता बना। ब्राह्मण में आत्म-विश्वास का अभाव था, इसलिए उसे बकरे से हाथ धोना पड़ा।

59. मूढ़ ममता

एक लड़का था। बचपन में ही उसके पिताजी चल बसे थे। माँ ने किसी तरह उसे पाला-पोसा। वह बड़ा हुआ। एक दिन वह बीमार पड़ गया। माँ दौड़ी-दौड़ी डॉक्टर को बुला लायी। डॉक्टर ने दवा दी और कह दिया : "इसे दो-एक दिन कुछ मत खिलाना।"

दो दिन बाद डॉक्टर फिर आया तो देखा कि लड़के की हालत बहुत खराब है। उसने पूछा : "माताजी, आपने लड़के को कुछ खिला तो नहीं दिया?"

माँ ने कहा : "थोड़ा खिलाया तो था। यह कई दिनों से भूखा था, और बार-बार.खाना माँग रहा था, इसलिए जब मैंने इसकी तबीयत जरा ठीक देखी, तो कुछ खाने को दे दिया।"

डॉक्टर ने कहा : "अब इसका उपचार करना मेरे वश की बात नहीं है।"

डॉक्टर गया और उधर लड़के ने दम तोड़ दिया।

मरने का कोई अंदेशा न रहने पर भी माँ की मूढ़ ममता ने लड़के की जान ले ली !

60. कल्याणम्

एक राक्षस था।

वह अकेला रहता था।

एक दिन वह घूमने गया। बाजार में पके-मीठे आम दिखायी दिये। आम खरीदे, खाये और फिर घर लौट आया।

कुछ समय बाद उसकी शादी हो गयी। बाल-बच्चे भी हो गये।

घूमता-घामता एक दिन वह फिर बाजार पहुँचा। आम खरीदे, पर इस बार वह खुद न खा सका। वह आम लेकर घर आया। बच्चे आम देखते ही खुश हो गये। उन्होंने दौड़कर सारे आम झपट लिये और बड़ी मस्ती से खाने लगे। उसे इसी में सुख मिल गया! शादी से दूसरों की चिन्ता करने का अभ्यास हुआ। इसीलिए शादी को 'कल्याणम्' कहा जाता है !

61. शंका डूबती है

ज्ञानी गुरु का एक शिष्य कहीं काम से जा रहा था। इतने में वर्षा शुरू हो गयी। शिष्य ने पूछा : “गुरुदेव, वर्षा के कारण रास्ते के नदी-नालों को कैसे पार करूँगा?”

गुरु ने कहा : “भगवान् का नाम लेकर।”

शिष्य की गुरुजी पर असीम श्रद्धा थी। उसने पानी पर चलते समय अत्यन्त श्रद्धा से गुरु का नाम लिया और पार हो गया।

दूसरे दिन गुरुजी को भी जाना पड़ा ! उन्हें लगा कि मेरे नाम से शिष्य तर गया तो मैं भी तर ही जाऊँगा !

गुरुजी पानी के पास पहुँचे तो उनके मन में शंका उत्पन्न हुई कि क्या सचमुच मैं पानी पर से पार हो जाऊँगा?

गुरुजी ने शंकाकुल हृदय से पानी पर पाँव रखा और डूब गये।

62. लुटेरा महर्षि !

प्रायः हर हिन्दू के घर में रामायण मिलेगी। उसे सन्त तुलसीदास ने लिखा है। उससे पहले भी एक रामायण लिखी जा चुकी है। वह संस्कृत भाषा में लिखी गयी है। उसे लिखा है महर्षि वाल्मीकि ने।

इतना महान् ग्रन्थ लिखनेवाले वाल्मीकि की कहानी बड़ी विचित्र है। पहले वे डाकू थे। आदमियों को लूटना, मारना और लूटे हुए माल से अपना गुजर करना, यही उनका काम था। बचपन का उनका नाम 'वाल्या' था।

एक दिन वाल्या जंगल में घूम रहा था। उसे कुछ दुर पर एक आदमी आता दिखाई दिया। उसकी खुशी का ठिकाना न रहा। वह आदमी कोई और नहीं, स्वयं नारद थे। जब वे करीब आ गये, तो वाल्या ने तलवार खींच ली और उन पर हमला करने के लिए चल पड़ा।

नारद ने देखा—एक आदमी हाथ में नंगी तलवार लिये आ रहा है। उन्होंने एकतारा छेड़ दिया और लगे गाने।

वाल्या के बढ़े कदम जहाँ-के-तहाँ रुक गये। उसकी बुद्धि चकरा गयी। उसकी समझ में कुछ नहीं आया। वह सोचने लगा कि यह कैसा अजीब आदमी है? अब तक तो दो ही तरह के आंदमी मैंने देखे थे। एक तो वे, जो हमले के लिए मुझे बढ़ते देखकर भाग खड़े होते थे और दूसरे वे, जो मेरी शरण में आकर रोने-गिड़गिड़ाने लगते थे, दुहाई देकर प्राणों की भीख माँगने लगते थे। लेकिन, यह आदमी तो विचित्र है। इस पर मेरा कोई असर ही नहीं होता।

डाकू को ठिठकते देखकर नारद ने पूछा—"कहो, क्या चाहते हो?"

वाल्या ने कहा—"मैं तुम्हें लूटने आया हूँ। मेरा यही पेशा है।"

नारद ने पूछा—"क्या तुम अपनी पत्नी से पूछकर आये हो? क्या वह भी तुम्हारे इस पाप में शामिल है?"

वाल्या ने कहा—"क्यों नहीं शामिल होगी ?"

नारद ने कहा—"जाओ, एक बार पूछ तो आओ।"

वाल्या घर गया। उसने पत्नी से पूछा तो पत्नी ने कहा—"तुम्हारे पापों में मेरा हिस्सा क्यों रहेगा ?"

पत्नी के इस उत्तर से वाल्या की आँखे खुल गयीं। बात उसकी समझ में आ गयी। वह लौटकर नारद के चरणों पर गिर पड़ा और लगा रोने। रोते-रोते उसने कहा—"मैं पापी हूँ महाराज, मेरी रक्षा करो।"

नारद ने कहा—"उठो-उठो, पश्चात्ताप से मनुष्य के सारे पाप कट जाते हैं। तुम अपनी गलती समझ गये और उसके लिए पश्चात्ताप कर रहे हो; इसलिए तुम्हारे भी सारे पाप कट गये, यों समझो कि नया जन्म हुआ।"

वाल्या ने घबराकर पूछा—"महाराज, आपने तो क्षमा कर दिया; लेकिन क्या भगवान् भी क्षमा कर देंगे?"

नारद ने कहा—"तू सम का नाम जपा कर। वह तुम्हें अवश्य क्षमा कर देंगे।"

कहते हैं वाल्या नारद का बताया 'राम' भूल गया और वह 'मरा-मरा' का जप श्रद्धापूर्वक करने लगा। वही नाम जपते-जपते वह इतना लीन हो गया कि उसे अपने शरीर का भान तक नहीं रहा। उसको ठूँठ समझकर दीमकों ने उस पर अपना घर बना लिया। बिमोट को संस्कृत में 'वाल्मीकि' कहते हैं। इसी 'वाल्मीकि' में वाल्या का मानो पुनर्जन्म हुआ। इसलिए उसका नाम 'वाल्मीकि' पड़ा।

इस तपस्या से उसका अज्ञान खत्म हो गया। उसकी बुद्धि में प्रकाश का उदय हो गया और लुटेरा वाल्या महर्षि वाल्मीकि बन गया।

63. पशु व प्रेम

पहले आदमी खरीदा जाता था, आदमी बेचा जाता था। उसे गुलाम कहते थे। उन्हीं दिनों की बात है।

एक था गुलाम। उसका नाम था एण्ड्रोक्लीज।

एक बार वह गुलाम किसी जंगल में घूम रहा था। उसे किसी जानवर के कराहने की आवाज सुनाई दी। वह उसी ओर बढ़ चला। थोड़ी दूर चलकर उसने देखा कि एक सिंह लेटा कराह रहा है।

पहले तो गुलाम की हिम्मत न हुई, लेकिन सिंह की दर्द-भरी आवाज उससे सही न गयी। गुलाम धीरे-धीरे उसके पास गया। उसने देखा कि सिंह के एक पैर में काँटा चुभ गया है। पीड़ा से वह बेचैन है। हथेली पर जान रखकर गुलाम उसके बिलकुल पास पहुँच गया और उसने सिंह के पैर से काँटा निकाल दिया। सिंह उठा और अपने ऊपर दया करनेवाले को मुड़-मुड़कर देखता, घने जंगल में धीरे-धीरे लँगड़ाता हुआ चला गया।

बरसों बाद किसी गलती पर उस गुलाम को मौत की सजा हुई। उसको फाड़ खाने के लिए सिंह छोड़ा गया। आदमी को देखते ही भूखा सिंह लपक पड़ा।

लेकिन, ज्यों ही वह एण्ड्रोक्लीज के पास आया; ठहर गया। उसे ध्यान आया कि इसी आदमी ने मेरे पैर से काँटा निकाला था। उसे अपने पके पैर का दर्द याद आ गया। वह एक बार काँप उठा। फिर वह भूखा सिंह पालतू कुत्ते की तरह दुम हिलाता हुआ गुलाम के पास आया और उसका पैर चाटने लगा। उसकी आँखों में कृतज्ञता के भाव थे।

पशु-पक्षी अपने ऊपर उपकार करनेवाले को नहीं भूलते। प्रेम की भाषा वे खूब पहचानते हैं। जो उनसे प्रेम करता है, वे भी उससे प्रेम का ही बरताव करते हैं।

64. सरदार की महानता

हमारे देश से हजारों मील पश्चिम में एक देश है। उसका नाम है अरब। अरब का बहुत ज्यादा हिस्सा रेगिस्तान है। ऊँट वहाँ का खास जानवर है। ऊँटों पर सवार होकर लोग एक जगह से दूसरी जगह जाते-आते हैं। सफर के लिए निकले ऊँटों के समूह को 'काफिला' कहते हैं।

उसी अरब देश के एक महान् सन्त हैं हजरत मुहम्मद। लोग उनको पैगम्बर कहते हैं। पैगम्बर यानी ईश्वर का सन्देश लानेवाला।

हजरत मुहम्मद ने 'इसलाम धर्म' चलाया। इसलाम को माननेवाले मुसलमान कहलाते हैं। इसलाम को न माननेवालों को मुसलमान काफिर कहते हैं।

पैगम्बर मुहम्मद को अपना धर्म चलाने में अनेक कष्ट सहन करने पड़े थे। उन दिनों वहाँ के समाज में जो अन्याय और अनाचार घुस गये थे, उनको मिटाने पर मुहम्मद साहब जोर देते थे। पुराने लोगों को यह बहुत खलता था। वे मुहम्मद साहब का विरोध करते थे। यहाँ तक नौबत आयी कि मुसलमानों और काफिरों के बीच आये दिन लड़ाई होने लगी।

मुहम्मद साहब के देहान्त के बाद भी यह लड़ाई जारी रही।

मुहम्मद साहब के बाद उनके उत्तराधिकारियों को भी ऐसी कई लड़ाइयाँ लड़नी पड़ी ।

एक बार लड़ाई में सरदार की जीत होने वाली थी, दुश्मन उनके हाथ में आ गया था, दुश्मन को जमीन पर पटककर वे उसके सीने पर चढ़ बैठे थे और उसके सीने में खंजर भोंकने ही वाले थे।

इतने में दुश्मन ने उनके मुँह पर थूक दिया। दूसरे ही क्षण उन्होंने खंजर हटा लिया और उसकी छाती से उतर गये।

साथियों ने उनसे पूछा—"आपने यह क्या किया? वह अच्छी तरह आपके हाथ आ गया था। आपको उसे कत्ल कर देना चाहिए था; लेकिन आपने तो उसे छोड़ दिया। आखिर आपने ऐसा क्यों किया?"

सरदार मुसकरा उठे। उन्होंने कहा—"जब उसने मेरे मुँह पर थूक दिया, मुझे बेहद गुस्सा आ गया। अगर मैं गुस्से की हालत में उसे मारता तो धर्म की लड़ाई न रह जाती। यही वजह थी कि मैंने उसे छोड़ दिया।"

सरदार के साथियों की आँखें खुल गयीं। उनकी समझ में आ गया कि सरदार कितने महान् हैं।

65. हार विजय में बदली

आज से कई सौ बरस पहले की बात है। उस समय दिल्ली मुगलों की राजधानी थी। दक्षिण में मराठे अपनी बहादुरी के लिए बेजोड़ माने जाने लगे थे।

उन्हीं मराठों के इतिहास की कहानी है।

मराठों ने सिंहगढ़ पर हमला किया। किले की दीवारें बहुत ऊँची थीं। उसके अन्दर घुसना बहुत कठिन था।

उस समय की लड़ाइयों में गोह की कमन्द इस्तेमाल की जाती थी। पानी के इस नन्हें-मुन्ने जानवर गोह की यह विशेषता है कि यह जहाँ चिपक जाती है, छोड़ने का नाम नहीं लेती। इसीलिए पहले जमाने में इसका उपयोग किलों की ऊँची दीवारों पर चढ़ने के लिए किया जाता था।

सिंहगढ़ में भी मराठों ने गोह की कमन्द का इस्तेमाल किया और वे एक-एक करके किले में उतर गये। घमासान लड़ाई छिड़ गयी। लड़ाई में सेनापति तानाजी मारे गये। उस समय सेनापति के मारे जाने पर अकसर सेना हिम्मत हार बैठती थी और भाग खड़ी होती थी।

सिंहगढ़ की लड़ाई में भी ऐसा ही हुआ। मराठों की सेना सिर पर पाँव रखकर भाग खड़ी हुई। जिस गोह की कमन्द से वह किले के अन्दर आयी थी, उसी के सहारे नीचे उतरने के इरादे से उधर दौड़ पड़ी।

तानाजी के छोटे भाई का नाम सूर्याजी था। उसने बुद्धि से काम लिया। सूर्याजी ने रस्सी काट दी और वहीं से चिल्लाकर कहने लगा—"मराठो ! भागते कहाँ हो। कमंद की रस्सी तो मैंने पहले ही काट दी है।"

भागते हुए मराठे रुक गये। उन्होंने सोचा—चाहे लड़ें या भागें, मरना तो है ही। फिर लड़कर क्यों न मरा जाय?"

सूर्याजी ने पुनः ललकार दी और मराठे भूखे सिंह की तरह दुश्मन पर टुट पड़े।

मराठों के इस साहस भरे भयानक हमले के आगे दुश्मन देर तक ठहर न सके। उनकी हिम्मत टूट गयी। मराठों की हार विजय में बदल गयी। सिंहगढ़ पर मराठों का झण्डा लहरा उठा।

66. गाय की ममता

पवनार आश्रम में एक भाई का नाम नामदेव था। उसने दो-चार गायें पाली थीं। वह उनकी खूब देख-रेख करता था। स्वयं खिलाता-पिलाता और स्वयं दुहता।

एक दिन नामदेव को किसी काम से 'सेलू' जाना पड़ा। अपना काम करके वह शाम को लौटा। नियम के अनुसार उसने गाय दुहने के लिए बछड़ा छोड़ा। गाय कूद गयी। उसने बछड़े को दूध नहीं पिलाया। नामदेव ने गाय दुहने की बहुत कोशिश की, लेकिन गाय ने दूध नहीं दिया।

नामदेव ने साथियों से पूछा—"आज गाय को क्या हो गया है?" लोगों ने बताया—"कुछ तो नहीं। पता नहीं, दूध क्यों नहीं देती। बछड़ा भी तो बँधा हुआ था। उसने दूध नहीं पिया है।"

नामदेव सोच में पड़ गया। बात उसकी समझ में नहीं आ रही थी। कुछ देर विचार करने के बाद नामदेव ने पूछा—"किसी ने उसे मारा-पीटा तो नहीं?"

एक भाई ने कहा—"हाँ, मारा तो था।"

नामदेव ने कहा—"बस, तो वह इसीलिए दूध नहीं दे रही है।"

नामदेव गाय के पास पहुँचा। उसने गाय के शरीर पर हाथ फेरा, उसे पुचकारा-दुलराया। गाय की ममता फूट पड़ी। वह दूध देने के लिए तैयार हो गयी।

67. बुरा न दीखा कोय

बात उस समय की है, जब ईसा जीवित थे। जैसे हमारे यहाँ कुछ दिनों पहले तक मामले-मुकदमे पंचायतों से होते थे, बहुत कुछ उसी तरह का नियम उस समय भी था।

ईसा मसीह लोगों को धर्मोपदेश दिया करते थे। इसलिए अकसर लोग अपने झगड़े उनके पास फैसले के लिए ले जाते थे। एक बार गाँव के लोग एक औरत को उनके पास ले आये। उस बहन पर घोर अपराध का आरोप था और उस अपराध का दण्ड था—पत्थर मार-मारकर अपराधी को जान से मार दिया जाय।

लोगों ने सारा मामला ईसा से कह सुनाया।

फिर उन्होंने अपना फैसला सुनाया—"इस बहन ने घोर अपराध किया है। इसके लिए यही सजा है कि सब लोग ढेले-पत्थरों से इसको मार डालें।"

फैसला सुनते ही कितनों की बाँहें फड़क उठीं। कितने उस बहन को मारने की जल्दी में तड़प उठे। उस बहन के लिए सबके चेहरों पर घृणा के भाव थे।

भगवान् ईसा को पंचों पर दया आयी, उनके फैसले पर दया आयी; और दया आयी उन लोगों पर, जो बहन को सजा देने के लिए उतावले हो रहे थे।

ईसा खड़े हो गये और उन्होंने सबसे एक ही बात कही – "जिसका मन बिलकुल साफ हो, वह पहला ढेला मारे।"

आगे बढ़ते हुए लोग ठिठक गये। धीरे-धीरे एक-एक आदमी वहाँ से खिसकने लगा। थोड़ी ही देर में वहाँ से सभी लोग जा चुके थे। बच गयी थी अकेली वह बहन और ईसा।

भगवान् ईसा ने उसे समझाकर प्रेम से विदा किया।

सच है –

बुरा जो देख मैं चला, बुरा न दीखा कोय।
जो घट खोजा आपना, मुझ-सा बुरा न होय।।

68. कोई पूछने की बात है?

पानीपत का मैदान मशहूर है लड़ाइयों के लिए। इस मैदान ने कितनों की किस्मतों का फैसला किया है, ऐसा कहा जाता है। लेकिन, इस मैदान ने कितनी माताओं को निपूती बनाया है, कौन बता सकता है? कितनी बहनों के भाई छीन लिये हैं, कौन जोड़ सकता है? कितनों का सुहाग-सिन्दूर पोंछ डाला है, कौन आँकड़े इकट्ठा कर सकता है?

इसी पानीपत के मैदान की कहानी है।

एक ओर मराठे सैनिक मूँछों पर ताव दे रहे थे; दूसरी ओर अहमदशाह अब्दाली के सिपाही आस्तीनें चढ़ा रहे थे। लेकिन दोनों एक-दूसरे से डर रहे थे। हमला पहले कौन करे, कैसे करे, एक सवाल बना हुआ था।

अहमदशाह अब्दाली बहुत चतुर था। वह लड़ाई में देर करना चाहता था। वह चाहता था कि किसी तरह मराठों की रसद रोक दी जाय, तो लड़ाई आसानी से जीती जा सकती है।

एक दिन शाम को अहमदशाह अब्दाली टहलने के लिए निकला। वह टहलते-टहलते मराठों की सेना की ओर निकल गया। दूर से उसने छोटे-छोटे अलाव जलते देखे। उसकी समझ में नहीं आया। उसने पूछा—"ये लोग अलग-अलग अलाव क्यों जला रहे हैं?"

साथ के सरदार ने कहा—"ये लोग अपना खाना अलग-अलग पका रहे हैं।"

"ये लोग अलग-अलग क्यों खाना बना रहे हैं?" अहमदशाह अब्दाली ने पूछा।

"क्योंकि एक दूसरे का छुआ खाना नहीं खाते।" सरदार ने बताया।

अब्दाली चौंक उठा—"क्या कहा सरदार ! तुम्हारी बात सच है।"

"तब तो मैंने उन्हें जीत लिया।" अहमदशाह बोल उठा।

"वह कैसे?" सरदार ने पूछा।

"यह भी कोई पूछने की बात है?" अहमदशाह ने कहा—"जब एक भाई दूसरे भाई के हाथ का छुआ नहीं खायेगा, एक दूसरे को नीचा समझेगा, तो वह कन्धे-से-कन्धा लगाकर लड़ कैसे सकेगा?"

यह तो रही पानीपत के मैदान की बात। हम लोग अपने दिलों की बात सोचें। क्या आज भी उनमें सबके लिए एक-सा प्रेम-भाव है? छूत-छात, ऊँच-नीच का भेद-भाव खत्म हो चुका है? हम सब एक-दूसरे को अपना भाई समझते हैं?

69. रात को क्यों आये?

एक था किसान। उसके पास खेत था। हल था। बैल थे। वह बड़ी मेहनत से खेती करता था। उसके पास केले, सन्तरे और आम के बाग भी थे।

गरमी के दिन थे। आम पक रहे थे। सन्तरे भी घर में थे। केलों की कमी तो उसके यहाँ कभी भी नहीं रही। रात को एक चोर ने सेंध लगायी और घर में घुस आया।

उसने देखा आम है, केला है, सन्तरा है; लेकिन रुपया-पैसा तो कहीं नहीं दिखता। उसे बड़ी निराशा हुई। उसने सोचा—"बड़ी हिम्मत करनी पड़ी है सेंध लगाने में, खाली हाथ कैसे लौटें। चलो, केले और आम पर तो हाथ साफ कर लें, भरपेट खा लें।" और, वह खाने में जुट गया।

घर की मालकिन जाग रही थी। उसे समझने में देर न लगी। उसने कहा—"अरे भाई, रात को क्यों आये? दिन में आते तो क्या नहीं देती? हमारे यहाँ अन्न की कोई कमी नहीं है। जरा ठहरो, मैं तुम्हें दूध भी ला देती हूँ।"

बेचारे चोर पर घड़ों पानी पड़ गया। गरदन उठाये न उठती थी। गया था चोरी करने; लेकिन वापस लौटा साधु बनकर।

जाते-जाते उससे यह भी कह दिया गया कि भाई, अगर तुमको काम चाहिए तो काम भी है। आ जाओ, हमारी सहायता करो।

कहते हैं, वह साधु गाँव-भक्त बन गया। वह गाँव में रहने लगा। गाँव वालों ने उसकी मदद की और वह खेती करने लगा। वह बड़ी मेहनत और लगन से काम करता।

उसे पेड़-पौधे लगाने का शौक हो गया। कुछ ही दिनों में उसके आम, केले और सन्तरे के बाग लहलहा उठे।

जब उसका कोई फल तैयार होता है, तो वह पहले गाँव वालों को खिलाता है, फिर स्वयं खाता है।

70. सब आने लगे

एक सत्पुरुष था। वह भगवान का सच्चा भक्त था। उसने एक मंदिर बनवाया। मंदिर बहुत सुन्दर था; लेकिन उसमें सिर्फ हिन्दू ही आते थे, मुसलमान नहीं आते थे। उन दिनों वहाँ मुसलमानों का राज था।

सत्पुरुष को यह बात अच्छी न लगी। उसने सोचा—"इस मन्दिर में मुसलमान नहीं आते, फिर यह किस काम का?"

उसने मन्दिर को तोड़वा दिया। मन्दिर की जगह उसने मसजिद बनवा दी।

एक हिन्दू ने मसजिद बनवायी है, यह जानकर मुसलमानों को बड़ी खुशी हुई। वे बड़े प्यार से आने लगे; लेकिन हिन्दुओं ने उसमें आना छोड़ दिया। उन्होंने सोचा—"इसका दिमाग खराब हो गया है।"

वह सत्पुरुष बहुत दुखी हुआ। बात उसकी समझ में नहीं आ रही थी। वह लगा सोचने—"अब करना क्या चाहिए?"

अन्त में उसे एक तरकीब सूझ गयी। उसने मसजिद को तुड़वा दिया और उसकी जगह टट्टीघर बनवा दिया।

मसजिद का तोड़ा जाना मुसलमानों को बहुत बुरा लगा। उन्होंने बादशाह से शिकायत की। बादशाह उस सत्पुरुष पर गुस्सा हो गया। उसने सत्पुरुष को दरबार में बुलाकर पूछा—"तुमने यह कया किया?"

सत्पुरुष ने बताया—"जब मैंने मन्दिर बनवाया, तो उसमें मुसलमान नहीं जाते थे और जब मसजिद बनवा दी, तो उसमें हिन्दू नहीं जाते थे; लेकिन अब मैंने टट्टीघर बनवा दिया है, तो उसमें हिन्दू भी जाते हैं, मुसलमान भी जाते हैं।"

बात बादशाह की समझ में आ गयी। उसका गुस्सा हवा हो गया।

71. बाग लहलहा उठे

राम और परशुराम की पहली भेंट धनुष यज्ञ के समय हुई थी। उस समय परशुराम को राम से बहुत बड़ी शिक्षा मिली थी। उसके बाद बहुत दिनों तक दोनों की मुलाकात नहीं हुई।

राम को वनवास हुआ। वे सीता और लक्ष्मण के साथ पंचवटी में रहने लगे। उसी समय कहीं से घूमते-फिरते परशुराम वहाँ पहुँच गये। उन्होंने देखा कि रामचन्द्र पौधों को सींच रहे हैं।

इस एकाएक मिलन से दोनों बहुत प्रसन्न हुए। राम ने परशुराम से हाल-चाल पूछा। फिर यह भी पूछा कि आजकल आप क्या कर रहे हैं? परशुराम ने अपनी कुल्हाड़ी के नये प्रयोग की बात बतायी। उस समय वे जंगलों को काटकर बस्ती बसाने का काम कर रहे थे।

रामचन्द्रजी ने उनकी बहुत प्रशंसा की। दूसरे दिन परशुराम वहाँ से लौट आये। अपने मुकाम पर पहुँचकर उन्होंने ब्राह्मणों को बुलाया। उनसे उन्होंने कहा—"रामचन्द्र मेरे गुरु है। जब धनुषयज्ञ के समय मिले थे, उन्होंने मेरा रास्ता ही बदल दिया था। तभी से मैं सेवा में लगा हूँ।"

"इस बार उन्होंने क्या उपदेश किया?"—एक ब्राह्मण ने पूछा।

"इस मुलाकात में राम ने मुझे कोई उपदेश नहीं दिया; लेकिन वे जो काम कर रहे थे, उससे मुझको बहुत बड़ी शिक्षा मिली।"

"वे क्या कर रहे थे?" पुनः उसी ब्राह्मण ने पूछा।

"पौधे सींच रहे थे।" परशुराम ने बताया।

"इससे क्या शिक्षा मिली?" एक दूसरा ब्राह्मण पूछ उठा।

"वही अब मैं तुम लोगों को सुनाता हूँ। हम लोग जंगल काटते हैं और बस्ती बसाते हैं। यह बहुत अच्छा है, लेकिन इसकी भी कोई हद तो होनी ही चाहिए?" परशुराम ने कहा।

हद का कया मतलब?" किसी तीसरे ब्राह्मण ने पूछा।

परशुराम ने बताया—"मतलब यह कि अगर हम लोग यों ही पेड़ों को काटते रहें, तो बहुत बड़ा नुकसान होगा; क्योंकि एक दिन ऐसा आ सकता है, जब पेड़ों का नाम-निशान ही न रहे, तब हमारा काम कैसे चलेगा?"

"तो कया करना चाहिए?" पुनः उसी ब्राह्मण ने पूछा।

"अब तक हमने जो किया, सो किया। अब हमें पेड़ काटने का काम बंद कर देना चाहिए।" परशुराम ने कहा।

"तब हमें करना क्या चाहिए?"

परशुराम ने कहा—"काटने के बजाय हमें रक्षा का काम करना चाहिए। जो पेड़-पौधे हमारे लिए उपयोगी हैं, उनकी देखभाल करनी चाहिए और नये पौधे हमें लगाने चाहिए। यह बहुत बड़ा काम है।"

और पेड़-पौधों को काटने के बजाय, उन्हें लगाने में परशुराम जुट गये। बेशुमार हाथ पेड़-पौधों को लगाने, सींचने और गोड़ने में लग गये। फिर क्या था, कुछ ही दिनों में फलदार पेड़ों के बाग लहलहा उठे। आम, केले, नारियल, काजू और कटहल फूलने-फलने लगे।

72. कल का क्या भरोसा?

पाण्डव पाँच भाई थे। सबसे बड़े भाई का नाम युधिष्ठिर था। दूसरे चार भाई थे—अर्जुन, भीम, नकुल और सहदेव। युधिष्ठिर को धर्मराज भी कहा जाता था। वे न्याय करने के लिए हमेशा तैयार रहते थे।

धर्मराज ने अपने महल में एक घण्टा टाँग रखा था। जिसको कुछ कहना होता, घण्टा बजा देता। धर्मराज सारा काम छोड़कर तुरंत नीचे उतर आते और उसकी बात सुनते। उनके इस व्यवहार से प्रजा सन्तुष्ट थी।

एक दिन पाँचों भाई बड़ी मजेदार चर्चा कर रहे थे। किसी ने घण्टा बजाया। सभी भाई बातों में लीन थे। धर्मराज ने उठकर जाना चाहा। भाइयों ने कहा—"आज नहीं, कल न्याय दे दिया जायेगा।"

युधिष्टिर ने कहा—"भाई, यह ठीक नहीं। कल का क्या भरोसा ! हम रहें, न रहें। आज का काम कल पर कभी नहीं टालना चाहिए। हम राजा हैं। हमारा काम न्याय करना है। यह बातें तो कभी भी हो सकती हैं। पता नहीं, उस आदमी पर क्या विपत्ति पड़ी है।"

भाइयों के पास इसका कोई जवाब न था।

73. कोई काम छोटा नहीं

राजसूय यज्ञ चल रहा था। भगवान कृष्ण पहुँचे। उन्होंने युधिष्ठिर से कहा—"मुझे काम दीजिए।"

युधिष्ठिर ने कहा—"आपके लिए हमारे पास काम नहीं है।"

भगवान कृष्ण ने कहा—"लेकिन, मैं बेकार कैसे रह सकता हूँ।"

तब युधिष्ठिर ने कहा—"आप अपना काम खुद ढूँढ़ लीजिए।"

भगवान् कृष्ण का जीवन एक आदर्शमय जीवन था। उनका हर काम दूसरों को नसीहत देता था। सभी जानते हैं कि जब कुरुक्षेत्र के मैदान में कौरवों और पाण्डवों की सेना आमने-सामने खड़ी थी, कृष्ण ने उन्हें जो शिक्षा दी, वह 'गीता' के रूप में संसार में अमर है।

वे भगवान् कृष्ण, भला ऐसे अवसर पर कब चूकने वाले थे। जब युधिष्ठिर ने कहा कि आप अपना काम खुद ढूँढ़ लीजिए तो उन्होंने कहा—"चुन लिया मैंने अपने लिए काम।"

और, भगवान् कृष्ण जूठी पत्तलें उठाने लगे। लीपने-पोतने का काम करने लगे। देखने वाले भगवान् की विनम्रता देखकर दंग रह गये।

74. चाँदनी कितनी लुभावनी है?

विश्वामित्र ऋषि थे। उनके मन में वसिष्ठ के प्रति द्वेष था। इसीलिए वे वसिष्ठ को सताने में न चूकते थे। लेकिन, वसिष्ठ इतने सहनशील थे कि उन पर कोई असर ही नहीं होता था। विश्वामित्र तिलमिलाकर रह जाते थे।

विश्वामित्र के मन से क्रोध नहीं गया था, वे मामूली-मामूली बात पर क्रोधित हो उठते थे। यही कारण था कि वसिष्ठ उन्हें ब्रह्मर्षि नहीं कहते थे।

विश्वामित्र वसिष्ठ के मुँह से अपने को ब्रह्मर्षि कहलाना चाहते थे। वसिष्ठ उन्हें ब्रह्मषि कहने के लिए तैयार नहीं थे; और यही कारण था उनसे विश्वामित्र के अप्रसन्न रहने का।

एक बार विश्वामित्र ने तय किया कि अब मैं घोर तपस्या करूँगा। फिर क्या था, वे जुट गये तपस्या में। लेकिन, कुछ ही दिनों में उनका क्रोध भड़क उठा और उन्होंने वसिष्ठ के सात पुत्रों को एक-एक करके मार दिया। तब भी वसिष्ठ चुप थे। विश्वामित्र से रहा न गया। अन्त में सोचा कि 'बस, एक ही रास्ता है, किसी तरह वसिष्ठ को ही मार डाला जाय।'

विश्वामित्र के मन में जो बात आ जाती, वह उसे पूरी करने के लिए तड़प उठते। आगे-पीछे उन्हें कुछ भी नहीं सूझता। क्या उचित है, क्या अनुचित है, इसका वे रत्तीभर भी ध्यान नहीं रख पाते थे।

फिर क्या था, वसिष्ठ को मारने के लिए विश्वामित्र उनके आश्रम में पहुँच गये। चाँदनी रात थी।,वसिष्ठ अपनी पत्नी अरुन्धती के साथ वाटिका में बैठे बातें कर रहे थे।

विश्वामित्र दोनों को बातें करते देख, एक झाड़ी के पीछे छिप गये और उनकी बातें कान लगाकर सुनने लगे।

अरुन्धती कह रही थीं—"आज की चाँदनी कितनी लुभावनी है।"

वसिष्ठ ने कहा—"हाँ, है तो सही; यह तो विश्वामित्र की तपस्या के समान उज्ज्वल है।"

विश्वामित्र वसिष्ठ से दुश्मनी रखते थे; लेकिन वसिष्ठ विरोधी की तपस्या का भी आदर करना जानते थे।

विश्वामित्र ने सुना, तो उनके आश्चर्य का ठिकाना न रहा। उन्होंने सोचा कि मैं तो हमेशा वसिष्ठ को सताता ही रहा हूँ, फिर भी ये मेरे गुणों का इतना आदर करते हैं।

विश्वामित्र का क्रोधी और घमण्डी मन भी पिघल गया ! वे मन-ही-मन बहुत शर्मिन्दा हुए। वे झाड़ी से बाहर निकल आये। उन्होंने बड़े ही आदरपूर्वक वसिष्ठ को प्रणाम किया।

वसिष्ठ प्रसन्न हो उठे और उन्होंने कहा--"उठो ब्रह्मर्षि।"

तब से विश्वामित्र ब्रह्मर्षि हो गये।

75. हमारी पहली जरूरत

गौतम राज्य का सुख छोड़कर शान्ति की खोज में निकल पड़े थे। उन्हें ज्ञान मिला और वे बुद्ध कहलाये। उनके धर्म को बौद्ध-धर्म कहते हैं। बुद्ध के जीवन में ही उनके शिष्यों की संख्या बहुत अधिक हो गयी थीं। वे घूम-घूमकर जनता को उपदेश दिया करते थे। जनता उनके शिष्यों की बातें बड़े ध्यान से सुनती थी।

एक दिन एक शिष्य आया। वह झुँझलाया हुआ था। उसके चेहरे पर परेशानी के भाव थे। भगवान बुद्ध ने पूछा— "कया बात है?"

शिष्य ने कहा—"भगवान, पास ही एक भिखारी बैठा है। मैं उसे अच्छे-अच्छे उपदेश दे रहा था, लेकिन उसने ध्यान ही नहीं दिया।"

बुद्ध ने कहा—"उसे मेरे पास लाओ।"

शिष्य दौड़कर गया और उस भिखारी को बुला लाया। बुद्ध ने उसकी दशा देखी। उन्होंने ताड़ लिया कि वह कई दिनों का भूखा है।

बुद्ध ने शिष्य से कहा—"इसे भोजन कराओ।"

भिखारी ने भोजन किया। उसकी जान में जान आ गयी। चेहरे पर तृप्ति के भाव दौड़ गये। भगवान बुद्ध ने उससे कहा—"अब तुम जाओ।"

शिष्य पास ही खड़ा था। उसके आश्चर्य का ठिकाना न रहा। उसने सोचा कि भगवान ने इसे खिलाया, पिलाया; लेकिन उपदेश तो कुछ भी नहीं दिया। वह अपने को रोक न सका। उसने बुद्ध से पूछ ही लिया—"भगवान, आपने इसे उपदेश तो दिया ही नहीं?"

भगवान बुद्ध ने कहा—"आज उसके लिए अन्न ही उपदेश था। आज उसे अन्न की ही सबसे ज्यादा जरूरत थी। वही उसे पहले देना चाहिए। अगर जीवित रहा, तो कल उपदेश भी सुनेगा।"

बात शिष्य की समझ में आ गयी।